पात्र-परिचय

पुरुष

१ सूत्रधार··· नाटकक निर्देशक ।
२ राजा (भीष्मक)···कुण्डिनपुरक राजा, भक्त, रुक्मिणीक पिता।
३ रुक्मी··· युवराज, भीष्मकक पुत्र, श्रीकृष्णक विद्वेषी ।
४ रुक्मरथ··· भीष्मकक पुत्र, रुक्मीक अनुगामी ।
५ कञ्चुकी (नयसागर)··· अन्तःपुरक रक्षक वृद्ध राजपुरुष ।
६ दौवारिक (कुण्डिनपुरक)··· भीष्मकक द्वारपाल ।
७ कलहवर्धन··· घटक, श्रीकृष्णक विद्वेषी ।
८ हरिवल्लभ··· घटक, कृष्णभक्त ।
९ द्विज··· निमन्त्रणपत्र-बाहक ब्राह्मण, दूत ।
१० श्रीकृष्ण··· बासुदेव, भगवान्, नायक ।
११ बलदेव··· कृष्णक अग्रज, हलधर ।
१२ उग्रसेन··· मथुराक राजा, कृष्णभक्त, कृष्णक मातामहभ्राता ।
१३ नारद··· देवर्षि ।
१४ दौवारिक··· श्रीकृष्णक द्वारपाल ।
१५ दारुक··· श्रीकृष्णक सारथी ।
१६ वैनतेय (गरुड़)··· वाहन, पक्षिराज ।
१७ किङ्कर··· श्रीकृष्णक नोकर ।
१८ क्रथ··· विदर्भक राजा, कृष्णक परमभक्त ।
१९ कैशिक··· विदर्भक राजा, कृष्णक परमभक्त ।

२० पुरुष''' कथ-कैशिकक सेवक ।

२१ चित्राङ्गद''' देवदूत ।

२२ प्रतीहार''' कथ ओ कैशिकक द्वारपाल ।

स्त्री

१ नटी''' सूत्रधारक पत्नी ।

२ देवी''' रुक्मिणीक माय, कृष्णक भक्ता ।

३ रुक्मिणी''' राजकुमारी, भीष्मकक पुत्री, नायिका ।

४ सुदक्षिणा''' रुक्मिणीक सखी ।

५ सुशोभना''' रुक्मिणीक सखी ।



श्रीः

रमापतिकृतम्

अथ रुक्मिणी-परिणय[1]-नाटकम्

रङ्गारम्भे कपालं शशधरमुरगं भूषणीकृत्य सद्यः
सन्दीप्याग्निं सुनेत्रे, रुचिर-जवनिकाऽर्थं प्रदिक्षेभ[2]-कृत्तिम् ।
नन्द्यादीनात्मवर्ग्यान् नटन-गतिकलागीतपाठेषु दक्षान्
सन्दिश्याऽऽनन्दपूर्णः शमयतु दुरितं सूत्रधारः शिवो वः ॥१॥

अपि च—

पादाघातप्रकर्षाद् व्रजति वसुमती, नागलोकं फणीन्द्रः[3],
कूर्मो नाऽलं विधर्त्तुं प्रभवति[4], गिरयो भग्नशृङ्गाः प्रकम्पात् ।

रुक्मिणी-परिणय-नाटक

नृत्यक आरम्भ मे खप्पर (चन्द्रमाक लेल कटोरी) ओ साप कें तुरत गहना बनाय, (प्रकाशक हेतु) आँखि मे आगि प्रज्ज्वलित कय, सुन्दर जवनिका (पर्दा) क हेतु चर्म उपस्थित कय ओ नाच-गान मे पटु नन्दी भृङ्गी इत्यादि अपनालोकसभकें आदेश दय नाटकक सूत्रधारस्वरूप आनन्दमय शिव अहाँलोकनिक विपत्तिकें शान्त करथु ॥१॥

आओरो—

(महादेवक नाचक काल हुनक) पाएरक आघातक अधिकता सँ पृथ्वी डोलए लगैत अछि, शेषनाग पाताल जाय लगैत अछि, (पृथ्वीधर नागक धारण कयनिहार) काछु पृथ्वी कें धारण करबा मे समर्थ नहि होइत छथि, भूकम्प सँ पहाड़क चोटीसभ खसए लगैत अछि—एहि तरहें तीनूलोकक नाश

---

१ – हरणं—'क' । २ – प्रविस्तीर्य – 'ख' । ३ – फणीन्द्रो – 'क' ख । ४ – सपदि ख / प्रभवति – 'क' ।

इत्थं दृष्ट्वा त्रिलोकी-विलयमथ सुरैस्संस्तुतः सोऽभिषेकात्
पीयूषस्याऽभिरक्षन् भुवनमवतु वो धूर्जटिः सुप्रसन्नः ॥२॥

नान्दीपद्यानुसारेण गीतमपि नाट्यागे :—

[गीतसंख्या — १]

नटराज हरा, नटराज हरा ।
डमरु - पिनाक - त्रिशूल-धरा ॥ध्रु०॥
विमल कपाल मुकुट सिर रजित
तिलक मनोहर रजनिकरा ।
कुण्डलि कुण्डले मण्डित श्रुतियुग
नयन अनल, फनिहार गरा ॥१॥
देल जमनिका विपुल गजाजिन
नन्दी नन्दी-पाठ करा ।
रङ्ग मृदङ्ग बजावथि भैरव
पाँचे बदने शिव सूत्रधरा ॥२॥

(प्रलय) होइत देखि देवतालोकनि हुनक (महादेवक) स्तुति कयलनि। ताहि सँ प्रसन्न महादेव अमृतक वर्षा सँ संसारक रक्षा करैत अहाँलोकनिक रक्षा करथु ॥२॥

नान्दी-पद्यक अनुसारेँ गीतो नाट्याग मे—[गीतसं०—१]

१—नटराज हरा = नाट्यक वेला ओ प्रदर्शक मे सर्वप्रधान हर (महादेव)। पिनाक = शिवक धनुष। कपाल = मनुष्यक खप्परक। राजित = शोभित। रजनिकरा = चन्द्रमा। कुण्डलि = सापक कुण्डल सँ दुनू कान शोभित। नयन अनल = आँखि मे अग्नि। फणिहार = सापक माला ॥

२—जमनिका = यवनिका = परदा। विपुल गजाजिन = विस्तृत हाथीक चर्म। नन्दी = महादेवक प्रधान सेवक। नन्दी-पाठ = नाटकक आरम्भिक मंगल पद्य नान्दी। रङ्ग = मञ्च पर। पाँचे बदने = पञ्चमुख भय महादेव स्वयं नाटकक सञ्चालक सूत्रधार बनल छथि ॥

ताल धरथि बेताल[1], विदूषक
नारद, योगिनि गानपरा ।
खण्डपरशु ताण्डव देखि हरषित
चण्ड हास कर प्रमथ वरा ॥३॥
पदभरेँ व्याकुल शेष कमठ दुहु
जतनहुँ धरय न पाब धरा ।
अतिकम्पित भय चलल रसातल
डगमग कर गिरि, टूट सिखरा ॥४॥
कर देइतेँ कङ्कन फनि उगिलल
परसल गरल सगर नगरा ।
अकमित[2] प्रलय तरासेँ चकित सबे
सुर मुनि दनुज मनुज निकरा ॥५॥
धमदतेँ ससधरे बमल सुधारस
तेँ बाँचल जग चर-अचरा ।
बाघछाले जिबि वृषभ पड़ाओल
तेँ पुनु बिकल भेल इसरा ॥६॥

३—वेताल = शिवक एक गण। विदूषक = नाटकक एक हास्योत्पादक पात्र नारद बनैत छथि। योगिनी = दुर्गाक सहचरी अष्टयोगिनी। खण्डपरशु = महादेवक ताण्डव = नृत्य। चण्ड = प्रचण्ड। प्रमथ = महादेवक एक गण ॥

४—पदभरेँ = पाएरक भार सँ। शेष = शेषनाग। कमठ = काछु (पृथ्वीकेँ शेषनाग ओ शेषनागकेँ काछु धारण कयने छथि।) गिरि = पहाड़।

५—कर देइतेँ = हाथ मे कगनाक रूप मे पहिरितहिँ। फनि = सर्प। गरल = विष। अकमित = अकस्मिक। तरासेँ चकित = डर सँ विस्मित। सुर मुनि = देवता मुनि दैत्य ओ मनुष्यक समूह।

६—ससधर = चन्द्रमा। बमल = उगिललनि। सुधारस = अमृत। बाघछाले = बाघक छाल अमृत पड़ला सँ जीविकय। वृषभ = बसहा केँ। पड़ाओल = बैलओलक। इसरा = ईश्वर महादेव।

१—बेताल • क ख। २—अकम्पित 'ख'।

हुतवह पवन कुबेर पुरन्दर
वरुण विरञ्चि विविध अमरा।
अबहु नाट परिछेद करिअ भव!
पुनु पुनु माँगय जोरि करा ॥७॥

प्रणत रमापति तुअ पद किङ्कर
शङ्कर सुनिअ विनति हमरा।
गिरिजा सहित सकल अघ दुरि कय
परसन भय दिअ अभय वरा ॥८॥

अपि च—

(गीत संख्या -- २)

जय जय त्रिभुवन-तारिणि देवि। सभे अभिमत पुर तुअ पद सेवि॥
जूटक बाँधि जटा धरु एक। तीनि नयन लोहित अतिरेक॥
सिर सोभे अनुपम पञ्च-कपाल। ससधर तिलक विराजित भाल॥
विकट दसन अति रसन अधीर। फणिमय भूषण खरब सरीर॥
खरग काति धरु दहिना हाथ। वामा इन्दीवर नर-माथ॥
नव यौवन उर पर मुण्डमाल। लम्बोदरि परिहन बघछाल॥

७— हुतवह = अग्नि। पवन = वायु। पुरन्दर = इन्द्र। विरञ्चि = ब्रह्मा। अमरा = देवगण। नाट परिछेद = नाट्यक समाप्ति। भव = महादेव।
८— प्रणत = नतमस्तक। किङ्कर = सेवक। अघ = पाप। परसन = प्रसन्न।

आओरो — गीत संख्या - २

त्रिभुवन-तारिणि = तीनू लोकक उद्धार कयनिहारि। अभिमत पुर = अभिलषित पुरैत छेक। जूटक = जुट्टी, समेटल केश। लोहित = लाल। अतिरेक = अतिशय। पञ्च कपाल = माथ पर पाँच गोट खप्पर (कपाल-माला)। ससधर तिलक = चन्द्रमारूपी तिलक। विराजित = शोभित। भाल = कपार पर। दसन = दाँत। रसन = जीह। अधीर = चञ्चल। फणिमय = साँपक। खरग काति = तरुआरि ओ काता। इन्दीवर नरमाथ = नीलकमल ओ नरमुण्ड। उर = छाती। लम्बोदरि = नमहल पेटवाली।

चहु दिश सतत फेरु कर सोर। चितिचय वास हास[1] अति घोर॥
प्रनत रमापति कह जग जोहि। शववाहिनि दाहिनि रहु मोहि॥

अपि च—

(गीत संख्या -- ३)

प्रनमञो भगवति पद अरविन्द।
मानस हमर करिअ सानन्द॥
जइअओ सतत तुअ भगति-विहीन।
तइअओ न उचित रहिअ हमे दीन॥
जञो कर तनय सहस अपराध।
न कर जननि परिपालन-बाध॥
यदि तेजिअ मोहि परसुत जानि।
जगजननी पद होएत[2] हानि॥
अञ्जलि बाँधि निवेदिअ तोहि।
हर-गेहिनि! परसनि रहु मोहि॥
तुअ पद प्रनत रमापति भान।
पातक[3] हरिअ करिअ वरदान॥

(नान्द्यन्ते सूत्रधारः)

सूत्रधारः—अलमतिविस्तरेण। भो भोश्चाराग्रेसराः! आदिष्टोऽस्मि निखि-

---

फेरु = गिदड़। चितिचय = चिताक समुदाय मे, श्मशान मे। शववाहिनि = मृतकक वाहन-वाली। दाहिनि = अनुकूल।

आओरो — गीत संख्या - ३

पद अरविन्द = चरण कमल। तुअ भगति विहीन = अहाँक भक्ति सँ रहित। तनय = पुत्र। सहस = हजार। परिपालन बाध = पालब नहि छोड़ैछ। परसुत = आनक पुत्र। हर गेहिनि = शिवक गृहिणी। पातक = पाप।

(नान्दीक अन्तमे सूत्रधार प्रवेश करैत छथि)

सूत्रधार—अधिक विस्तारक प्रयोजन नहि। हे हे अग्रगामीलोकनि! आदेश

---

१ — हाल — 'ख'। २ — तएह — 'ख'। ३ — पाप हेरिअ — 'क'।

रुभूपालमण्डली - निर्मलकिरीटनिवह-सम्मार्जित-पदद्वन्द्वारविन्द-
परागेण प्रोद्दण्ड-दोर्दण्डदण्डसंलग्न-प्रचण्डमण्डलाग्रखण्ड-खण्डीकृताऽ-
शेषद्विपन्मण्डलेन समुच्छ्रिताऽति- वितत-यवन-बलारण्य-विलुप्त-
मैथिलपदवी -प्रवर्त्तक-प्रताप - दवदहन-ज्वालावली-समुद्भासित-
दिक्चक्रवलयेन नानादेशोपगत - सकलार्थिवृन्दाभिलाष-परिपूरणैक-
सुरद्रुमावतारेण महाराज - श्री श्री श्रीमन्नरेन्द्रसिंह-देवदेवेन,
यथा भगवत्याः श्रीकमलेश्वर्याः स्नानयात्राप्रसङ्गेषु समुपागतान्
अतिदूरवर्त्तिनोऽपि महाजनान् विविधविद्या-विलासिनी-कम-
नीयकण्ठाभरण - सदृशान् अस्मत्सदोवस्थितांश्च विद्वज्जनान्
अभिनन्दयितुं कस्यापि नूतनरूपकस्याभिनयमाचरस्वेति ।
तच्च विना प्रेयस्या स्मर्तुमपि न शक्नोमि किं पुनरभिनेतुम् ।
अतस्तामेवाऽऽहूय अनुचिन्तयामि तदिति । (परिक्रम्य नेपथ्या-

पलोने छी—सकल राजवर्गक स्वच्छ मुकुट-समूहक द्वारा पोछल गेल
छनि दूनू चरणकमलक पराग जनिकर, प्रचण्ड बाँहि रूपी दण्ड मे
लागल प्रचण्ड मण्डलाग्र (आगूभाग मे गोलाकार लिबल) तरुआरि
सँ काटल गेल समस्त शत्रुवर्ग जनिका सँ, समृद्धिशाली अतिविस्तृत
मुसलमानी सेनारूपी वन मे लुप्त भेल मैथिलपदवी केँ फेरसँ चला-
बयबाला प्रतापरूपी दावाग्नि (वनक आगि) क ज्वालाक समूह सँ
अत्यन्त प्रकाशित छन्हि दिशाक ओर-छोर जनिका द्वारा, अनेक देश
सँ आयल सकल याचक-समूहक अभिलाषा केँ पूर्णकरबा मे कल्पवृक्ष
स्वरूप, महाराज श्री श्री श्रीमान् नरेन्द्र सिंह देवदेवक द्वारा—जे
भगवती श्रीकमलेश्वरीक (कमला नदीक) स्नानप्रयुक्त मेलाक अवसर
पर अत्यन्त दूरहु सँ आयल महान् व्यक्तिसभक, अनेक विद्यारूपी
विलासवतीक सुन्दर कण्ठक गहना सदृश तथा हमर सभा मे रहनि-
हारो विद्वानलोकनिक अभिनन्दन करबाक लेल कोनो नवीन नाटकक
अभिनय करहु । आ से बिना प्रियाक सोचियो ने सकैत छी आ

४—स्मिपु— क' । विश्वस्त—'ख' ।

भिमुखमवलोक्य सबहुमानम्) प्रिये ! इतस्तावदायातु
भवती ।

नटी—(प्रविश्य) वन्दामि पढमं अज्जउत्तं, अध आणवेदु मं अणुग्गहं कदुअ
अज्जउत्तो, केण उण कज्ज-विसेसेण सुमरिदह्मि अज्जउत्तेण ? [वन्दे
प्रथमम् आर्यपुत्रम् । अथ आज्ञापयतु माम् अनुग्रहं कृत्वाऽऽर्यपुत्रः, केन
पुनः कार्यविशेषेण स्मृतास्मि आर्यपुत्रेण ?]

सूत्रधारः—प्रिये ! जानात्येव भवती,

अस्ति श्रीराघवेन्द्रक्षितिरमणसुतो मैथिलानामधीशो
दाने कल्पद्रुमाभः प्रहत-रिपुबलध्वान्तविध्वंसनार्कः ।
कीर्त्या निर्जित्य चन्द्रं धवलितभुवनो भर्गपादारविन्द-
द्वन्द्वव्यासक्तचेता नृपकुलतिलकः श्रीनरेन्द्रादि-सिंहः ॥३॥

तेन च नव्यरूपकाभिनयाय नियुक्तोऽस्मि, तदनुस्मरणायाऽऽकारणाय च ।

अभिनय करय सँ कय सकब । अतः हुनके बजाय तकर परामर्श
करैत छी । (टहलि नेपथ्य दिस देखि अतिआदरपूर्वक) प्रिये !
कनेक एम्हर आउ अहाँ ।

नटी—(प्रवेश कय) पहिने आर्यपुत्रकेँ प्रणाम करैत छी । तखन कृपा कय
आर्यपुत्र हमरा आज्ञा देथु जे कोन विशेष काजक हेतु आर्यपुत्र स्मरण
कयलनि अछि ?

सूत्र०—प्रिये ! अहाँ जनितहि छी,

राजा राघव सिंहक पुत्र, मैथिलसभक अधिपति (राजा), दान
करबा मे कल्पवृक्षक समान, विस्तृत शत्रुक बलरूपी अन्धकारक नाश
करबा मे सूर्यस्वरूप, यश सँ चन्द्रमाकेँ जीति संसारकेँ उज्जर बन-
ओनिहार, शिवक चरणकमल-द्वयमे चित्तकेँ लगओनिहार तथा राजा-
लोकनि मे श्रेष्ठ श्रीनरेन्द्र सिंह छथि ॥३॥

हुनका द्वारा नवीन नाटकक अभिनय करबा मे नियुक्त छी । तकर
पुनः स्मरणकरयबाक लेल ओ तदनुसार तैयार होयबाक लेल (बजओने
छी) ।

नटी—एदेण[1] अज्जउत्तस्स दंसणेण सप्पसाद-विविह-वअणोवण्णासेण[2] अ भीसम-णरवइ-दुहिआ रुप्पिणी व्व भअवदो सिरिकण्हस्स दंसण-वअण संविहाणेणाहं[3] हिदहिअआ संवुत्तम्हि । तदोअ[4] किम्पि ण सुमरिदुं पहवामि । [एतेन आर्यपुत्रस्य दर्शनेन सप्रसाद-विविध-वचनोपन्यासेन च भीष्मनरपति-दुहिता रुक्मिणीव भगवतः श्रीकृष्णस्य दर्शन-वचन-संविधानेन ऽहं हृतहृदया संवृत्ताऽस्मि । ततश्च किमपि न स्मर्तुं प्रभवामि ।]

सूत्र०—(क्षणं विचिन्त्य स्मृतिमभिनीय च साऽतिहर्षम्) प्रिये ! प्रायः प्रिय-जन सान्निध्यं[5] सर्वकार्यसाहाय्यमाचरति, यतो भवत्या ईदृशेनापि दृष्टान्तोपन्यासहित-वाग्विधानेन यत् पूर्वं, पल्लीकुल प्रवर्त्तनैक-

---

नटी—आर्यपुत्रक एहि दर्शन सँ तथा प्रसन्नतापूर्वक अनेक गप्प-सप्प सँ भग-वान् श्रीकृष्णक दर्शन वचन ओ क्रिया सँ राजा भीष्मक पुत्री रुक्मिणी जकाँ हम हरण भेल हृदयवाली भय गेलि छी । तेँ किछु मोन पड़बा मे समर्थ नहि होइत छी ।

सूत्र०—(किछु काल सोचि मोन पड़बाक अभिनय कय अत्यन्त प्रसन्नता सँ) प्रिये ! प्रायः प्रिय व्यक्तिक समीप भेला सँ सभ काज मे सहायता होइत छैक कियेक त अहाँ एहु प्रकारक दृष्टान्त युक्त वचनक विन्यास सँ (मोन पाड़ि देलहुँ अछि ।) जे पहिने, 'पलिवार मूलग्रामक प्रारम्भ करबा मे एकमात्र ब्रह्माक अवतार—छबो अङ्ग चारू उपाङ्ग ओ रहस्य सहित त्रयीविद्या (वेद) मे पारङ्गत—सदिखन यज्ञीय-व्रतक आचरण करैत—भृगुमुनिक सदृश—श्रीमान् भृगुदेवक वंशमे उत्पन्न, कविसमुदायक भूषण श्रीकृष्णपति उपाध्यायक पुत्र, वत्सगोत्रीय श्री-रमापति शर्मा छात्रलोकनिक प्रार्थना पर उत्सुकतावश नवीन 'रुक्मिणी-

---

1—एविण—'क' 'ख' । 2—वअनाखेन—'ख' । 3—संविहाणोहं—क ख । 4—तदोणं—क ख । 5—सान्निध्यमेव कार्य—'ख' ।

कमलासनावतार-साङ्गोपाङ्ग-सरहस्य-त्रयीनिष्णात - सततसमाचरित-वैतानव्रत-भृगुमुनिप्रख्य-श्रीमद्भृगुदेववंशोद्भवेन कविकुलालङ्कार-श्रीकृष्णपत्युपाध्याय तनूजन्मना वत्सगोत्रेण श्रीमद्रमापतिशर्मणा छात्रादिभिरभ्यर्थ्यमानेन कुतूहलादभिनवं रुक्मिणीपरिणयं नाम रूपकं प्रागेवाभिनिर्माय चिरतरसेवनोपजात-दयावशाद् विविध-नाटका-दिपाठशीलेषु अस्मदादि भारतेष्वन्तेवासिषु समर्पितमासीत्, तदधुना स्मृतवानस्मि ।

नटी—मएवि दाणि सुमरिदं तं । सअलजण-सलाहणीए तस्सि कस्स ण अणु-राओ हुविस्सदि । ता सुट्ठु एदं । [मयापि इदानीं स्मृतं तत् । सकल-जन-श्लाघनीये तस्मिन् कस्य न अनुरागो भविष्यति ? तत् सुष्ठु एतत् ।]

सूत्र०—तदाऽस्य भूपाल-निवहावतंसस्य पूर्वेषां 'गुणपरिचयौ[1] प्रथममाख्यातु भवती ।

नटी—बाढम् । [अवहट्ट--गीतिः]

तवक सत्थ समुद्द णाविअ चन्दवइ--सुअ पण्डिओ ।
राअ वग्ग समग्ग अच्चिद पाअ पङ्कअ मण्डिओ ॥

परिणय नामक रूपक (दृश्यकाव्य) झट दय बनाय बहुत दिनक सेवासँ उत्पन्न दयावश, अनेक नाटकादिक पाठ कयनिहार अस्मदादि (हमरा-लोकनि) नट ओ शिष्यसभकेँ समर्पित कयने छलाह - से एखन मोन पड़ल अछि ।

नटी—हमरहु एखन से मोन पड़ल । सभालोकक द्वारा प्रशंसित ओहि नाटक मे ककरा ने अनुराग होयतैक ? तेँ ई उत्तम अछि ।

सूत्र०—तखन राजालोकनिमे अलंकार स्वरूप हिनक (नरेन्द्रसिंहक) पूर्वपुरुष-सभक गुण ओ परिचय पहिने कहू अहाँ ।

1—क्षितिश्चगुणपरिचयौ—'ख' ।

जस्स जेट्ठो बुह भइ बड़[१] बुह दमोअर सोअरो ।
मच्चलोअ महेस सरिस महेस ठक्कुर णरवरो ॥
सव्व कव्व कलासु[२]-णिउणो तीअ तनअ सुहङ्करो ।
सत्थ अत्थ समत्थ सअल विपक्ख पक्ख भअङ्करो ॥
तसु सुओ पुरिसोत्तमो जसु णाम तिहुअण सोहई ।
जीअ हीरअ खाणि लुण्टण किंत्ति भूसण[३] मोहई ॥
तसु कणिट्ठ वरिट्ठ-भूवइ धम्म-भूसण सुंदरो ।
विण्हु-भत्ति-पराअणो मिहिलाधालित्ति पुरंदरो ॥
महिणाह-सीहो तसु सुओ अरितिमिर खण्डण दिणअरो ।
दुविअ[४] णरवइ भूवई सिवचरण सरसिअ महुअरो ॥

नटी—अवश्य, अवश्य । [अवहट्ट-भाषा मे गीत]

तर्कशास्त्र[1]-समुद्र नाविक चन्द्रपति-सुत पण्डिते ।
राजवर्ग समग्र अर्चित[2] पादपङ्कज मण्डिते ॥
जेठ जनिके वृद्ध भाए बड़ बुध[3] दामोदर सोदरे ।
मर्त्यलोक-महेश[4] सदृश महेश ठाकुर नरवरे[5] ॥
सर्व काव्य कला मे निपुणे तनिक तनय[6] शुभङ्करे ।
शस्त्र अस्त्र समर्थ सकल विपक्ष पक्ष भयङ्करे ॥

टिप्पणी--

1—तर्कशास्त्ररूपी समुद्र मे खेवैया (महेश ठाकुर) चन्द्रपति ठाकुरक पुत्र । 2—सकल राजा सँ पूजित चरणकमल सँ शोभित । 3—महापण्डित दामोदर ठाकुर । 4—मर्त्यभुवनक महादेवक समान । 5—श्रेष्ठ व्यक्ति । 6—तनिक पुत्र शुभङ्कर ठाकुर ।

१ - रह - 'क' । २ - कलासु - 'क' 'ख' । ३ - भुअल - 'ख' । ४ - बीअ णरव सुवई - 'क' 'ख' ।

तस्स[१] राहव सीह देओ महाराअ पअङ्किओ ।
जीअ आहव-कम्म सव्व अरादि - भूवइ सङ्किओ ॥
दाण णिन्दिअ बलि - महीवइ, तहा[२] कण्ण - णरेसरो ।
सअल दिअवर कम्म तोसिअ जेण सिरि परमेसरो ॥
तस्स सिरिल[३] णरेंद सीहो महाराअवरो सुओ ।
जीअ भीम समान विक्कम अरिभअंकर भुअजुओ ॥
रह[४] तुरङ्गम हत्थि[५] जूह समत्थ अत्थहिं दप्पिआ ।
जीअ खग्ग अमित्त - वग्ग समग्ग सग्ग[६] समप्पिआ ॥

तनिक सुत पुरुषोत्तमे जनिक नाम त्रिभुवन सोभए ।
जनिक हीरक-खानि[7] लुण्ठन कीर्त्ति भूषण मोहए ॥
तनिक कनिष्ठ वरिष्ठ-भूपति धर्म भूषण सुन्दरे[8] ।
विष्णुभक्ति परायणे मिथिला धरित्रि-पुरन्दरे[9] ॥
महिनाथ सिंह तनिक सुत अरितिमिर[10] खण्डन दिनकरे ।
द्वितीय नरपति भूपती शिवचरण सरसिज[११] मधुकरे ॥
तनिक राघवसिंह देवे महाराज-पदाङ्किते ।
जनिक आहव[१२]-कर्म सर्व अराति[१३]-भूपति शङ्किते ॥
दान-निन्दित[१४] बलि-महीपति, तथा कर्ण-नरेश्वरे[१५] ।
सकल द्विजवर[१६] कर्म तोषित जाहि सिरि परमेश्वरे ॥

7—हीराक खान लुटबाक यश । ('आनन्दविजय नाटिका मे "अहीर खानिक लुट्टिआ" ।) 8—सुन्दर ठाकुर । 9—मिथिला महीक इन्द्र (राजा) । 10—शत्रुरूपी अन्धकारक खण्डन करबा मे सूर्य । ११—महादेवक चरणकमलक भौंरास्वरूप नरपति ठाकुर । १२—युद्ध । १३—सकल शत्रु राजा सभ । १४—दान सँ राजा बलि कें निन्दित कय देल । १५—राजा कर्ण । १६—ब्राह्मणक सभ कर्म (आचरण) कयश्रीपरमेश्वर कें सन्तुष्ट कयल ।

१—रक्ख - ख । २—रमण सहो - 'ख' । ३ - सिरी - ख । ४ - रेह - 'ख' । ५ - हात्थि - 'ख' । ६ - सभा - ख ।

[[७]तर्कशास्त्र - समुद्र - नाविकः चन्द्रपतिसुतः पण्डितः ।
राजवर्ग—समभ्यर्चितपादपङ्कज— मण्डितः ॥
यस्य ज्येष्ठो वृद्ध-भ्राता बहुबुधो दामोदरः सोदरः ।
मर्त्यलोक - महेशसदृशो महेशठक्कुरो नरवरः ॥
सर्वकाव्य-कलासु-निपुणो तस्य तनयः शुभङ्करः ।
शस्त्रास्त्र - समर्थः सकल विपक्षपक्ष भयङ्करः ॥
तत्सुतः पुरुषोत्तमो यस्य नाम त्रिभुवने शोभते ।
यस्य हीरक-खानि-लुण्ठन-कीर्त्ति-भूषणं मोहयते ॥
तस्य कनिष्ठो वरिष्ठभूपति धर्मभूषणः सुन्दरः ।
विष्णुभक्तिपरायणो मिथिलाधरित्री-पुरन्दरः ॥
महिनाथसिंहस्तस्सुतः अरितिमिर खण्डन-दिनकरः ।
द्वितीयो 'नरपति' भूपतिः शिवचरण-सरसिज-मधुकरः ॥
तस्य राघवसिंहदेवो महाराज-पदाङ्कितः ।
यस्य आहव कर्मणा सर्वाराति-भूपतिः शङ्कितः ॥
दान-निन्दितो बलिमहीपतिः तथा कर्णनरेश्वरः ।
सकल द्विजवर-कर्म-तोषितो येन श्रीपरमेश्वरः ॥
तस्य श्रील नरेन्द्रसिंहो महाराजवरः सुतः ।
यस्य भीम-समान-विक्रमः, अरिभयङ्करो भुजयुगः ॥
रथ-तुरङ्गम हस्तियूथः समस्तार्थे दर्पितः ।
यस्य खड्गेन अमित्रवर्गः समग्रः स्वर्गं समर्पितः ॥]

(इति पठनीयम् ।)

तनिक श्रील नरेन्द्रसिंहे महाराजवरे सुते ।
जनिक भीमसमान विक्रम, अरिभयंकर[१७] भुजयुगे ॥
रथ[१८] तुरङ्गम हाथि जुथ, समस्त अर्थहि दर्पित[१९] ।
जनिक खग अमित्र[२०]वर्ग समग्र स्वर्ग-समर्पिते ॥

१७—शत्रुकें डरायबला दुहू भुजा । १८—रथ, घोड़ा ओ हाथीक झुण्ड ।
१९—अभिमानी । २०—शत्रुक समूह कें स्वर्गमे दय देल ॥

७ - (ई संस्कृत छाया किछु भिन्नरूपें अपूर्ण 'क' पुस्तक मे अछि, 'ख' मे नहि ।)

सूत्र - प्रिये ! साधु, साधु ! सम्यक् परिचीयते त्वया एष महाराजः । तस्मात् सहैव मया मदन्तेवासिभिश्च कुशीलवै र्गीयतां सम्यगस्य गुणौघः ।

नटी - भद्रं । [भद्रम् ।]

(ततः सर्वे गायन्ति)

[गीतसं० – ४]

मैथिल भूपति सिंह नरेन्द्र ।
जसु परतापे चकित भेल इन्द्र ॥
खण्डवला कुल मणिमय दीप ।
भुजबले जीतल सकल महीप ॥
दाने सुरद्रुम नहि तसु तूल ।
परजा - पालक धरमक मूल ॥
जाचक गन दारिद दुरि गेल ।
कीरति धवल दशओ दिश भेल ॥
सज्जन मन नव कञ्ज दिनेश ।
जसे निन्दित बलि - कर्णनरेश ॥

(ई पढ़बाक चाही ।)

सूत्र०—प्रिये ! वाह, वाह !! नीकजकाँ अहाँ एहि महाराजकें जनैत छियनि । तें हमरा संगहि ओ हमर शिष्य नर्त्तकसभाक हिनक संग गुणसमूह कें नीक जकाँ गाउ ।

नटी—बेस ।

(तखन सभ केओ गबैत छथि ।)

गीतसं० – ४

भूपति = राजा । जसु परतापे = जनिक प्रतापसँ । महीप = राजा । सुरद्रुम = कल्पवृक्ष । तसु तूल = तनिक तुलना मे । याचक गन = याचक गण, मङनिहार । दारिद = दरिद्रता । कीरति = कीर्त्ति, यश । धवल

आन नृपति नहि तनिक समान ।
सुमति रमापति कर गुणगान ॥

सूत्र०—एवमेतत् । किन्त्व सोऽयं नृपो येन,
विजित्य शत्रुं सबलं सहानुजं[1]
भ्रष्टाऽपि[2] लब्धा मिथिलापुरी पुनः ।
प्रमथ्य चैद्यादि-नृपं सरुक्मिणं
श्रीवासुदेवेन विदर्भजा[3] यथा ॥४॥

(नेपथ्ये साक्षेपम् :—आः पाप शैलूषाधम ! मयि जीवति धनुष्पाणौ[4]
कोऽसौ गोपालाऽपसदः कृष्णो मद्भगिनीं रुक्मिणीं परिणेष्यति, जरा-
सन्ध-प्रभृतिभि र्महारथिभिरनुगम्यमानं चैद्यराजं वा विजेष्यते ? शृणु,
[5]वृथोदाहरण-पद्यपाठक-कुनाट्यप्रवर्त्तक-चारणाऽपसद !

=उज्जर । नव कञ्ज = नवीन कमल (सज्जनक मनरूपी) क हेतु ।
दिनेस = सूर्य । जसे = यश सँ ॥

सूत्र०—ठीक । आ ई ओहे राजा थिकाह जे—
शत्रु कें ओकर छोट भाय ओ सेना समेत जीति हाथ सँ गेलो
मिथिला नगरी कें पुनः प्राप्त कयलनि, जेना श्रीकृष्ण चेदिराज
शिशुपाल कें रुक्मीक समेत मारि कें रुक्मिणी (विदर्भराजक
पुत्री) कें प्राप्त कयलनि ॥४॥

(नेपथ्य में आक्षेप सहित :- अरे पापी अधम नट ! धनुष हाथ मे लेने
हमरा जिबैत के ओ नीच गोपाल कृष्ण हमर बहिन रुक्मिणी सँ विवाह
करत अथवा जरासन्ध आदि महारथीलोकनि सँ अनुगत(युक्त) चेदिराज
शिशुपाल कें जीतत ? सुनह व्यर्थ उदाहरणक श्लोक पढ़निहार निन्दित
नाट्यक प्रारम्भ कयनिहार अधम भाँट !

१—सबान्धवं—ख । २—प्रसह्य—'ख' । ३—जैव—क ख ।
४—धनुष्पाणौ—'क' । ५—पशूदाहरण—'ख' ।

एकेनैव जरासुतेन समरे भङ्गं समासाद्य यो
गोपालो मथुरां विहाय शरणं प्रत्यक्समुद्रं गतः ।
सोऽयं सम्प्रति सर्वभूप-निवहै र्युक्तं हि चैद्याधिपं
जित्वा प्राप्स्यति रुक्मिणीमिति कथं मूढ ! प्रतीतं त्वया ॥५॥)

सूत्र०—प्रिये ! कथमयं भ्रूभङ्ग भीषणललाटतट-संलग्न-कोपारक्तनयन दुर्निरी-
क्ष्य-मुखमण्डलः तर्जयन्निव दृष्टिपातेनैव नः[1] सर्वान् भर्तृदारको रुक्मी
रुक्मद इत्यपि परिभाषया ख्यातोऽनुजं र्भ्रातृभी रुक्मरथादिभिरनुगम्य-
मान इत एवाऽऽगच्छति । मद्वाण्या चाऽयं सञ्जातकोप इवेत्यवग-
च्छामि । तस्मादस्माकं कुपितस्यास्य पुरतोऽवस्थानमयुक्तमेव ।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ इति प्रस्तावना ॥

एसकरे जरासन्ध सँ युद्ध मे हारिके जे गोपाल मथुराकें
छाड़ि पश्चिम समुद्रक शरण मे गेल, से ई एखन सकल राजाक समूह
सँ युक्त चेदिराज शिशुपालकें जीति रुक्मिणीकें प्राप्त करत—रे मूर्ख !
एहि बात पर तों कोना विश्वास कयलें ? ॥५॥)

सूत्र०—प्रिये ! की ई भौंहक टेढ़ कयला सँ डराओन कपारक कात (नीचाँ) मे
लागल क्रोधें लाल आँखिसँ कठिनतापूर्वक देखबाक योग्य मुँहवला,
देखले डरा़र हमरासभ कें डँटैत जकाँ युवराज रुक्मी रुक्मद नामें
सेहो प्रसिद्ध, रुक्मरथ आदि छोट भाय-सभ सँ अनुगत एम्हरहि अबैत
छथि । हमर बात सँ ई क्रुद्ध भेल सन लगैत छथि तें क्रोधित हिनका
सोझाँमे हमरालोकनिक रहब ठीक नहि ।

(बहार होइत छथि ।)

॥ इति प्रस्तावना ॥

१—नस्सर्वान्—'ख' ।

अथ प्रथमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति यथा निर्दिष्टो रुक्मरथादिभ्रातृभिः परिवृतो रुक्मी)

[गीतसं०--५]

रुकुमद कुमर देल परवेस। कोपित वदन भयंकर भेस॥
कुटिल[1] भौंह संकुचित ललाट। रण अति निरभय हृदय-कपाट॥
बान कमान विराजित हाथ। परिजन सहित सहोदर साथ॥
कुण्डल केयुर वलय विसाल। उर सोभ अनुपम मुकुता-माल॥
हरि सुनि लोचन कोपें कषाय। बहुत नृपति रह हुनिक सहाय॥
तसु दुरमति जश के नहि जान। अभिनव सुमति रमापति भान॥

रुक्मी—("आः पापे" इत्यादि [श्लोकसं० ५ पर्यन्त] पठित्वा) वत्स! रुक्मरथ! क्व गतोऽसौ दुराशयो भरतात्मजः?

प्रथम अङ्क

(तखन रुक्मरथ प्रभृति भायलोकनि सँ घेरल रुक्मी पूर्वनिर्दिष्ट रूप मे प्रवेश करैत छथि।)

गीतसं- ५

रुकुमद कुमर=राजकुमार रुक्मद (रुक्मी)। परवेस=प्रवेश। कोपित वदन=तमसायल मुँह। कुटिल=टेढ़। संकुचित ललाट=घोँकचल वा तनल कपार। अतिनिरभय=अतिशय निर्भीक हृदयरूपी केवाड़वला। परिजन=परिवार। केयुर=बाँहिक गहना। वलय=बाठा। उर सोभ=छातीपर शोभित। अनुपम=जकर उपमा नहि हो। मुकुता-माल=मोतीक माला। हरि=कृष्णक नाम। कषाय=गेरुआ रंगक। नृपति=राजा।

रुक्मी—("आः पाप" इत्यादि श्लोकसंख्या ५ तक पढ़ि) बौआ रुक्मरथ! कतय गेल ओ दुष्ट नट?

---

1 - कुञ्चित - 'क'।

रुक्मरथ।—अज्ज! भवदो दंसण-णिमित्तकेण[2] ज्जेव पलाइदो। ता णिवत्ति-अदु अज्जो। [आर्य! भवतो दर्शननिमित्तकेन अत्रैव पलायितः। तन्निवर्तताम् आर्यः।]

रुक्मी—(किञ्चिन्निवृत्य) वत्स! अतिविप्रियवाक्यश्रवणात् संवर्द्धिताऽमर्षोऽहं सोढुं न शक्नोमि। अतो मद्वचनात् [3]सूतमाज्ञापय यथा झटित्येव मद्रथं सज्जीकृत्य आनयतु अहमप्यस्त्रागारं गत्वा यावद् आयुधान्यादाय सन्नद्धकवचो भवामि।

रुक्मरथः—(सप्रश्रयमञ्जलिं बद्ध्वा) अज्ज, अज्ज! सम्पदं एदं ण सोहणं कस्सवि जाचअ-जणस्स वअणेण विपक्ख-णअरं गदुअ तहाविहेण[4] रिउणा समं समरकम्म-समुज्जोओ। ता[5] कोहं संहरिअ उअविसदु अज्जो, तदो मन्तइस्सं। [आर्य आर्य! साम्प्रतमेतन्न शोभनं कस्यापि याचकजनस्य वचनेन विपक्षनगरं गत्वा तथाविधेन रिपुणा समं समरकर्मसमुद्योगः। तत् क्रोधं संहृत्य उपविशत्वार्यः तदा मन्त्रयिष्ये।]

रुक्मरथ--आर्य! अपनेक दर्शनक कारणेँ एखनहि पड़ाएल। तेँ आर्य घुरि जाउ।

रुक्मी- (कनेक घुरैत) बौआ! अति अप्रिय बात सुनला सँ क्रोध बढ़बाक कारण हम सहि नहि सकैत छी। अतः हमर वचन स सारथिकेँ आज्ञा दएह जे झटदय हमर रथकेँ सजाय आनओ हमहूँ यावत् अस्त्रागार जाय शस्त्र लय कवच पहिरि तैयार होइत छी।

रुक्मरथ—(नम्रता सहित कर जोड़ि) आर्य, आर्य! एखन ई नीक नहि होयत जे कोनो भिखमंगाक वचन सँ विरोधीक नगर जाय ओहन शत्रुक संग युद्धक तैयारी करी। तेँ क्रोध केँ समेटि आर्य बैसल जाओ, तखन परामर्श करब।

---

2 - दसणे सेतु केण - 'क', दंसणे मेत्त केण- 'ख'। 3 - सत 'क', सेनापति (सेत) 'ख'। 4 - तुहारिकेहण - 'क', तुहारिहेण - 'ख'। 5 - स - 'क', 'ख'।

रुक्मी – यथा रोचते वत्साय । (इति समुपविश्य) वत्स ! श्रूयताम् :—

[गीतसं०-६]

भीषम नृप सुत हमे युवराज ।
हम सञ्ओं कओन करत रण काज ॥
जखने धरिअ हमे करे सरचाप ।
तहिखने त्रासें वैरिगण काप ॥
सर सन्धान हमर पुनि देखि ।
रणभूमि छाड़य अस्त्र उपेखि ॥
सोम जरासंध नृप सिसुपाल ।
हमर सपक्ष सकल महिपाल ॥
युद्ध—विसारद थिक सबे भाय ।
हम जानिअ सब अस्त्र उपाय ॥
पौरुष हमर भुवन सबे जान ।
अभिनव सुमति रमापति भान ॥

रुक्मरथः—अज्ज ! एवमेदं[3], तहावि दाणिं ज्जेव विग्गहो ण जुत्तो जइ सो रुप्पिणीं बलक्कारेण उव्वाहइस्सदि तदो जहा अज्जेण विदं तहा

रुक्मी – जे बौआकें नीक लागय । (बैसि) बौआ सुनू :—

गीतसं० – ६

भीषम नृपसुत = राजा भीष्मक पुत्र । सञ्ओं = सँ । रण = युद्ध । सरचाप = बाण ओ धनुष । त्रासें = डरें । वैरिगण = दुश्मन सभ । सर सन्धान = बाणक निशाना । उपेखि = उपेक्षा कय, छोड़ि । सोम = सोमदत्तक पुत्र । सपक्ष = समान बलवला । महिपाल = राजा । युद्धविसारद = युद्ध करबा मे कुशल । अभिनव सुमति = नवीन 'सुमति' उपाधिवला । (प्राचीन 'सुमति' उमापति छलाह) ।

रुक्मरथ – आर्य ! ई यथार्थ अछि, तथापि एखनहि युद्ध ठीक नहि । यदि ओ रुक्मिणी सँ बलपूर्वक विवाह करत तँ तखन जेना आर्य कहल अछि

१ - य ओ - 'ख' । २ – अमरास्थ — क । ३—एवमणेदं — क ख ।

कदव्वं । अवि[6]अ अज्ज सुदं मए कञ्चुई-मुहादो, पहादे[7] महाराओ देवीए कुमारेणा वि समं सुविआरिअ सअम्बरुज्जोअं करिस्सदि त्ति । ता अज्जो वि वीसमिअदु दाव । [आर्य ! एवमेवेदं, तथापि इदानीमेव विग्रहो न युक्तो यदि स रुक्मिणीं बलात्कारेण उद्वाहयिष्यति तदा यथा आर्येण वृतं तथा कर्त्तव्यम् । अपि च अद्य श्रुतं मया कञ्चुकीमुखात् यत् प्रभाते महाराजो देव्या कुमारेणापि समं सुविचार्य स्वयंवरोद्योगं करिष्यति । तद् आर्योऽपि विश्राम्यतु तावत् ।]

रुक्मी—भवत्वेवम् को[8]ऽत्र दोषः ? (इति विश्रामं नाटयति ।)

(ततः प्रविशति राजा)

[गीतसं०---७]

भीषम नृपति देल परवेस ।
जनि कुण्डिनि[9] अवतरल सुरेस ॥
मणिमय मुकुट विराजित[10] माथ ।
जनि उदयाचल उगु दिननाथ ॥
कनक-दण्ड सित—छत्र अमोल ।
विमल धवल दुइ चामर डोल ॥

तहिना करब । आओरो, आइ हम सुनल अछि कञ्चुकीक मुहेँ जे भिनसरखन महाराज देवीक (महारानीक) संग ओ कुमारोक (अहूँक) संग नीकजकाँ विचारि स्वयंवरक उद्योग करताह । तेँ आर्यो तावत् विश्राम कयल जाओ ।

रुक्मी – एहिना होअओ । एहि मे कोन क्षति ? (विश्राम करबाक अभिनय करैत छथि ।)

(तखन राजा प्रवेश करैत छथि ।)

गीतसं०—७

नृपति = राजा । कुण्डिनि = कुण्डिनपुर मे । सुरेस = इन्द्र । दिननाथ = सूर्य । कनक दण्ड सित छत्र = सोनाक डंटा सँ युक्त उज्जर छाता ।

६ – विआ अद – क; वि अध—ख । ७ पभादे—क ख । ८ - वाल - ख ।
९ - कुण्डलि - क । १० - विभूषित - ख ।

परजापति सम परजापाल ।
तस कर देअ निखिल[1] भूपाल ॥
वैरिविनास किनास समान ।
सतत करथि षोडस महादान ॥
हरिपदपङ्कज धरथि धेआन ।
सुमति रमापति कर गुणगान ॥

राजा—कः कोऽत्र भोः !

दौवारिकः—(प्रविश्य, शिरसा प्रणम्य) एसोह्मि, आणवेदु महाराओ।
[एषोऽस्मि, आज्ञापयतु महाराजः ।]

राजा—कञ्चुकिनं शीघ्रमानय ।

दौवारिकः—ज देओ आणवेदि। [यद् देव आज्ञापयति ।] (इति निष्क्रम्य पुनः कञ्चुकिना सह आयातः ।)

(ततः प्रविशति कञ्चुकी)

कञ्चुकी—(आत्मानं निर्वर्ण्य जरावैकल्यं नाटयति):—

अमोल = अमूल्य । विमल धवल = निर्मल एवं उज्जर । चामर = चँवर । परजापति = ब्रह्मा । तसु = तनिका । कर = राजस्व (टैक्स) । निखिल = सभ । वैरिविनास = शत्रुक नाश कयनिहार । किनास = किन्नरेश, कुबेर ॥

राजा—क्यो एतय अछि ?

दौवारिक—(प्रवेश कय, माथ झुकाय प्रणाम कय) इयेह हम छी । आज्ञा देल जाओ महाराज !

राजा - कञ्चुकी कें जल्दी बजाबह ।

दौवारिक - जे सरकारक आज्ञा । (बहार भय कञ्चुकीक संग आयल ।)

(तखन कञ्चुकी प्रवेश करैत छथि ।)

कञ्चुकी - (अपनाकें नीक जकाँ देखि बुढ़ारीक दुःखक अभिनय करैत छथि)

---

११ - लिखल -- क ।

[गीत सं० — ८]

हमे कञ्चुकि नयसागर नाम ।
नृप अभिलषित करिअ सभठाम ॥
कास-कुसुम तह उज्ज्वल केस ।
सबतह[1] सबकें दिअओ उपदेश ॥
जराञो विकल अतिकम्पित देह ।
पद देइतें पथ होअ सन्देह ॥
स्रवन विलोचन मन्थर भेल ।
ई अधिकार तइअओ नहि[2] गेल ॥
कर सोभे निरमल रजतक दण्ड ।
सतत रहिअ हमे अन्दर-खण्ड ॥
सबहु काज हमरा अवधान ।
हरिपद प्रणत रमापति भान ॥

(निपुणं निरूप्य) एष महाराजः सिंहासनमलङ्करोति । तदुपसर्पामि । (इत्युपसृत्य) जयति जयति महाराजः । महाराज ! किमर्थमाहूतोऽस्मि ?

गीत सं० - ८

नृप अभिलषित = राजाक जे इच्छा । कास कुसुम = काड़ीक फूल सन । सबतरि = सभ ठाम । जाराञो = बुढ़ारी सँ । पद = पएर । पथ = रास्ता पर । स्रवन = कान । विलोचन = आँखि । मन्थर = क्षीण शक्ति । ई = कञ्चुकीक । रजतक = चानीक । अन्दर खण्ड = अन्तःपुर । अवधान = ज्ञान ॥

(नीकजकाँ देखि) इयेह महाराज सिंहासन कें शोभित करैत छथि । त लग जाइत छी । (लग जाय) महाराजक जय हो । महाराज! कोन काज लय बजाओल अछि ?

१—सबतह—क । २ - रहि - ख ।

राजा - नयसागर ! रुक्मिण्याः परिणयार्थं देवी मां प्रति कुपितेव तिष्ठति ।
अतस्तद्विचारणार्थं तां सम्प्रसाद्यानयेति ।

कञ्चुकी - यथाऽऽज्ञापयति महाराजः । (इति निष्क्रम्य अन्तःपुरं गतः । देवीसमीपं गत्वा) देवि ! रुक्मिण्याः पाणिग्रहार्थं देव्या सार्धं महाराजः किमपि मन्त्रयिष्यति ततो देवीं द्रुतमानयेत्यहमनुप्रेषितः । तेन देव्या[1] तत्समीपगमनमधुनैव विधेयम् ।

देवी - अज्ज णअसाअर! मए वारंवारं अब्भत्थिदो वि महाराओ ण लज्जेदि, तदो कधं तत्थ[2] गन्तव्वं । [आर्य नयसागर ! मया वारंवारमभ्यर्थितोऽपि महाराजो न लज्जते, ततः कथं तत्र गन्तव्यम् ?]

कञ्चुकी - तथाप्येकवारं पुनरपि तत्र गमनमेव देव्याः श्रेयस्करम् ।

देवी - अज्जस्स वअणं कधं अण्णधा कदव्वं, तदो गमिस्सं[3] ।
[आर्यस्य वचनं कथमन्यथा कर्तव्यं, ततो गमिष्यामि ।]
(ततः प्रविशति पटीक्षेपेण कुमारिकया सह देवी)

राजा—नयसागर ! रुक्मिणीक विवाहक हेतु महारानी हमरा पर तमसायल जकाँ छथि । अतः तकर विचारक हेतु हुनका प्रसन्न कय आनह ।

कञ्चुकी—जे महाराजक आज्ञा । (बहार जाय ड्योढ़ीक भीतर गेलाह । देवीक लग जायकेँ) महारानी ! रुक्मिणीक विवाहक हेतु अपनेक संग महाराज किछु परामर्श करताह । तेँ 'देवीकेँ (अहाँकेँ) जल्दी लाबह' -- ई कहि हमरा समीप पठओलनि अछि । अतः देवी (अहाँ) हुनक समीप एहिखन चली ।

देवी—आर्य नयसागर ! हम बेरि बेरि महाराजकेँ एहिलेल प्रार्थना कयलियनि, तैयो ओ नहि लज्जित होइत छथि, त कोना ओतय जाउ ?

कञ्चुकी—तैयो एक बेरि फेरो ओतय देवीक जएबे नीक होयत ।

देवी—अपनेक वचन केँ कोना टारि सकैत छी, तेँ जायब ।
(तखन प्रवेश करैत छथि परदा हटाय कुमारीक संग देवी)

---

१ - तत् गमनं - ख । २ - तथ्यागन्तव्वं - क ख । ३ - गमिस्सो - क ख ।

[गीत सं०--९]

आधि मलीन दीन तनु भेस ।
भीषमनृप - महिषी परवेस ॥
अविरल लोचन गर जलधार ।
कुवलय दल जनि मुञ्च तुषार ॥
आनन दिवस -- सुधाकर तूल ।
फुजल चिकुर अतिमलिन दुकूल ॥
मणिमय सकल विभूषण काढ़ि ।
भूपति निकट भेलि गए ठाढ़ि ॥
तनया देखि देखि मने झाख ।
समुचित वर कारने अभिलाष ॥
हरि तेजि चित्त धरथि नहि आन ।
रानी रूप रमापति भान ॥
खण्डवलाकुल सागर चन्द्र ।
रस बुझ रसमय सिंह नरेन्द्र ॥

अपि च-

[गीत सं० - १०]

गमने जिनिन्द मरालक नारि ।
संगे जननि चलु राजकुमारि ॥

गीतसं० - ९

आधि = दुःख सँ । दीन तनु = गरीब सनक देहक वेश । महिषी = पटरानी । अविरल = धाराप्रवाह । लोचन गर = आँखि सँ चूबैत अछि । कुवलय दल = कमलक पत्ती । मुञ्च = छोड़ैत अछि । तुषार = बर्फ, पाला । आनन = मुँह । दिवस-सुधाकर = दिनुका चन्द्रमाक सन । चिकुर = केश । दुकूल = वस्त्र । काढ़ि = उतारि । झाख = माथ धुनैत छथि । हरि तेजि = कृष्णकेँ छोड़ि ॥
आओरो ..

गीत सं० १०

गमने = चालि सँ । मरालक नारि = हंसीकेँ । जननि = मायक । नख-

नख - रुचि गञ्जित नूतन चन्द ।
चरणे विलज्जित थल - अरविन्द ॥
करिकर पाब[1] न ऊरु - जुग भास ।
तेँ गिरि कन्दर करय निवास ॥
विपुल नितम्ब, मध्य कटि खीन ।
करतल अरुण - कमल छवि जीन ॥
भुजयुग कनक - मृणालक तूल ।
कम्बु कण्ठ, नासा तिल - फूल ॥
अधर विनिन्दित बिम्ब प्रवाल ।
कुन्द - कोरक सम दसन विसाल ॥
लय खञ्जन - युग उग हिमधाम ।
तजो तस आनन दीअ उपाम ॥
चामर नहि तसु चिकुर - समान ।
रुकुमिनि - रूप रमापति भान ॥

राजा - अयि प्रिये ! इहैवासने समुपविश्यताम् ।

रुचि = नहक चमक सँ । गञ्जित = तिरस्कृत । चरणे = पायर सँ । थल अरविन्द = थल कमल । करिकर = हाथीक सूँढ़ । ऊरुजुग = दूनू जाँघ । गिरिकन्दर = पर्वतक गुफा मे हाथी निवास करैछ । विपुल = विशाल । मध्य = देहक बीच मे । कटि = डाँर । खीन = क्षीण, पातर । करतल = तरहत्थी । अरुण = लाल । छवि = सुन्दरता । जीन = जीतैत अछि । भजयुग = दूनू बाँहि सोनाक कमलनालक तुल्य । कम्बु = शंखक समान । नासा = नाक । बिम्ब = तिलकोड़क फड़ ओ मूँगा (प्रवाल) । कोरक = कली । दसन = दाँत । हिमधाम = चन्द्रमा । चिकुर = केश ॥

राजा - अए प्रिये ! एतहि आसन पर बैसू ।

१—पाबन जर जॅग—क ख ।

देवी—(दीर्घं निःश्वस्य) महाराअ ! जाव रुक्मिणीए परिणओ ण भोदि, कधं आसणे उअविसह्मि दाव ? [महाराज ! यावद् रुक्मिण्याः परिणयो न भवति कथमासन उपविशामि तावत् ?] (इति भूमावुपविशति ।)

राजा—प्रिये ! दुहितु विवाहे जनन्याः प्राधान्यम्, अतो देव्याः कीदृशो विमर्शः?

देवी—णाह ! अह्माणं विआरेण किं एत्थ, जदो कुमारिआ-परिणये जणओ जहा करेदि तहा भोदित्ति । [नाथ ! अस्माकं विचारेण किमत्र, यतः कुमारिका-परिणये जनको यथा करोति तथा भवतीति ।]

राजा—प्रिये ! देव्या यो वरोऽभिलषितो मयाऽपि स एव विधेयः । अन्यच्च, यत्र कन्यका-जनन्याः कुत्सितवरे पक्षपातस्तत्र च जनकस्य स्वेच्छा । न खलु भवादृश्यः कुत्सितवरे पक्षपातशीला भवन्ति । तस्मात् स्वविमर्शमावेदय ।

देवी—(उत्थाय साश्रुपातं सप्रश्रयं[1] गीतेन [2]आवेदयति :—)

[गीतसं० — ११]

भूपति ! अबहु करिअ सुबिचार ।
दुहिता-परिनय तोरित कराबिअ, आनिअ घटक कुमार ॥ध्रु०॥

देवी - (पैघ साँस लय) महाराज ! यावत् रुक्मिणीक विवाह नहि होइत अछि तावत् आसन पर कोना बैसू ? (भूमिअहि पर बैसैत छथि ।)

राजा - प्रिये ! बेटीक विवाह मे माइक प्रधानता होइछ । अतः देवीक केहन विचार अछि ?

देवी - प्राणनाथ ! हमरा विचारेँ एहिमे की, कियेक तँ कुमारिक विवाह मे पिता जेना करथि तहिना होइछ ।

राजा - प्रिये ! देवीकेँ जे वर इष्ट छथि, हमरहु सएह कर्त्तव्य छथि । दोसर बात, जाहिठाम कन्याक माइक अधलाह वर पर पक्षपात रहैत छनि ओतहि पिता स्वेच्छाचारी होइत छथि । मुदा, अहाँ सन माए अधलाह वर मे पक्षपात नहि कय सकैत छथि । तेँ अपन विचार कहू ।

देवी - (आँखि नोर खसबैत विनयपूर्वक गीतद्वारा आवेदित करैत छथि) :—

---

१ - सप्रणयं - क । २ - चावे - ख ।

राजकाज तेजि अति सविनय भय, नेओतिअ नृपति - कदम्ब ।
सहज कुटुम्ब संबोधि समति लिअ, आबे न उचित विलम्ब ॥
रूपें शीलें कुलें विक्रमें आगर नागर गुणक निधान ।
से वर अपने मने अनुमानिअ, ताहि पुछब के आन ।
कुतनय दुरमति चितें जनु राखिअ, भाखिअ जनु किछु मन्द ।
तें परिपाटि विवाहु निवाहिअ, जाहि बाढ़ नहि दन्द ॥
कुमरि हमरि जलधि-दुहिता सनि, [१]बएस बरए दस ताहि ।
हरखि निवेदिअ सकल-कला-बस[२], नारायण सम जाहि ॥
तुअ अभिलषित सकल परिपूरत, न करिअ हृदय मलान ।
रुकुमिनि देइ पति होयत श्रीपति, सुमति रमापति भान ॥

राजा—ममाऽप्येतदेवाऽभिमतं, किन्तु तादृश-सकलगुणाश्रयो वरो मया विचारितः । स देव्याऽपि श्रोतव्यः—

दुष्टानां निधनाय सम्प्रति भुवो भाराऽवताराय यो
रक्षायै विदुषां सतां त्रिभुवनत्राणाय लक्ष्मीपतिः ।

गीत सं०—११

दुहिता-परिनय = बेटीक विवाह । तोरित = शीघ्र । नृपति-कदम्ब = राजाक समुदायकें । संबोधि = सम्बोधन कय । समति = सम्मति । विक्रमें = वीरतासँ । कुतनय = कुपुत्र (रुक्मी) । मन्द = अधलाह कथा । दन्द = द्वन्द्व, झगड़ा । कुमरि = कुमारी ।
जलधिदुहिता = समुद्रक पुत्री लक्ष्मी । मलान = दुःखी । श्रीपति = कृष्ण॥

राजा—हमरहु यैह विचार अछि, किन्तु ओहन सभ गुणक आश्रय वर हम विचारने छी । से देवियो सुनल जायः—
जे दुष्ट सभक मृत्युक हेतु, एखन पृथ्वीक भार उतारबाक लेल, विद्वानक रक्षाक हेतु ओ तीनू लोकक रक्षाक हेतु लक्ष्मीपति श्रीविष्णु यादव-वंश मे वसुदेवक घर मे जन्म लेलनि अछि, सएह समस्त पापक नाश कय-

---

१—सरि बरख बस—ख । २—रस—क ।

सम्भूतो वसुदेव-वेश्मनि यदो वंशे समस्ताऽघहा
श्रीकृष्णो मथुरापुरे विजयते जामातृयोग्यो वरः ॥६॥

देवी—महाराअ ! रुक्किणिए सरिसो वरो मए वि सो णिरूविदो, जइ एत्थ आगमिस्सदि । [महाराज ! रुक्मिण्याः सदृशो वरो मयापि स निरूपितो यद्यत्राऽऽगमिष्यति ।]

राजा—तर्हि गच्छतु देवी रुक्मिण्या सहाऽन्तःपुरम् । मयापि कुमारमाहूय क्रियते स्वयंवरार्थमुद्योगः । सदा सकल-राजन्य-मण्डले निमन्त्रणीये यादवानामपि निमन्त्रणं कुमारस्यानुमतमेव भविष्यति । ततो भक्तवत्सलतया अन्तर्यामि भगवान् आगमिष्यत्येव ।

देवी—जं आणवेदि णाहो तहा करेम्ह । [यदाज्ञापयति नाथस्तथा कुर्मः ।]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति रुक्मिणीपरिणये राज्ञोसमाश्वासनं नाम प्रथमोऽङ्कः ॥

निहार श्रीकृष्ण जमाय करबाक योग्य वर मथुरा नगर मे विजय प्राप्त कय रहल छथि ।।६।।

देवी—महाराज ! रुक्मिणीक समान वर हमरहु यैह सुझैत छथि जँ ओ एतय आबथि ।

राजा—तखन देवी (अहाँ) रुक्मिणीक संग अन्तःपुर जाथु । हमहूँ कुमारकें बजाय स्वयंवरक हेतु उद्योग करैत छी । तखन सभ क्षत्रियलोकनिकें निमन्त्रण देबाक प्रसंगमे यादवो लोकनिकें निमन्त्रण देब कुमारोक (रुक्मीक) सम्मत होयत । तकर बाद भक्त पर स्नेहरखबाक कारण अन्तर्यामी (मनक बात बुझनिहार) भगवान् श्रीकृष्ण अयबे करताह ।

देवी—जे अपनेक आज्ञा से करैत छी ।

(सभ बहार भय गेल)

रुक्मिणीपरिणय मे 'रानीकें धैर्य देब' नामक पहिल
अङ्क समाप्त भेल ।

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति राजा कञ्चुकी च)

राजा— नयसागर ! आहूयतां कुमारः ।

कञ्चुकी—(रुक्मिणः समीपं गत्वा) जयति जयति कुमारः । महाराजस्त्वां द्रुतं द्रष्टुमिच्छति ।

रुक्मी— एहि, गच्छामि । (इति सहसोत्थाय प्रचलितः ।)

कञ्चुकी—(नृपसमीपं गत्वा) महाराज ! समायातः कुमारः ।

रुक्मी— (प्रणम्योपविश्य) महाराज ! किमर्थमाहूतोऽस्मि ?

राजा— वत्स ! तव भगिन्या दशवर्षवयो वृत्तम् । तस्याः पाणिग्रहणहेतो र्देवीमामभ्यर्थयति । तत्र युवराजस्य कः[1] परामर्शः ?

रुक्मी— ममाऽभिमतमेव तत् ।

द्वितीय अङ्क

(तकर बाद राजा ओ कञ्चुकीक प्रवेश करैत छथि ।)

राजा— नयसागर ! कुमारकेँ बजाउ ।

कञ्चुकी—(रुक्मीक समीप जाय) कुमारक जय हो । महाराज अहाँकेँ शीघ्र देखय चाहैत छथि ।

रुक्मी— आउ, जाइत छी । (एकाएक ऊठि चलैत छथि ।)

कञ्चुकी—(राजाक लग जाय) महाराज ! आबि गेलाह कुमार ।

रुक्मी— (प्रणाम कय बैसि) महाराज ! कियेक बजाओल ?

राजा— बाउ ! अहाँक बहिनिक दस वर्ष वयस भय गेल । हुनक विवाहक हेतु महारानी हमरा कहैत छथि । ताहि मे युवराजक की विचार ?

रुक्मी— हमर अभीष्टे अछि से ।

---

१ - ० विमर्शः - ख ।

राजा— कस्तस्याः समुचितो वरो विचारितः ?

रुक्मी— चेदिराज-दमघोष-तनयः शिशुपालाख्यो महाराजः ।

राजा— तस्य कुल-शील-विनयादिकं घटकमुखात् किं त्वया परीक्षितम् ?

रुक्मी— मयैव[2] सर्वं ज्ञायते ।

राजा— तथापि लौकिककार्ये तेषां प्राधान्यादवश्यं[3] ते प्रष्टव्याः ।

रुक्मी— तर्हि समागच्छतु ।

राजा— दौवारिक ! आहूयतां कलहवर्धनाऽभिधानो घटकः ।

दौवारिकः—जं देओ आणवेदि । [यद्देव आज्ञापयति ।] (इति निर्गत्य तेन सह आयातः ।)

(ततः प्रविशति कलहवर्धनः)

कलहवर्धनः— (गीत सं० - १२)

हम अछि घटक नृपति सबे जान ।
सब तह[4] अधिक हमर अभिमान ॥

राजा— कनिका हुनका लेल उपयुक्त वर विचारल अछि ?

रुक्मी— चेदि देशक राजा दमघोषक पुत्र शिशुपाल नामक महाराजकेँ ।

राजा— हुनक कुल शील विनय इत्यादि घटकक मुहेँ अहाँ जाँचल अछि की ?

रुक्मी— हमहीँ सभ किछु जनैत छी ।

राजा— तैयो लौकिक काजमे हुनका लोकनिक प्रधानता रहैत छनि, तेँ अवश्य हुनका सभकेँ पुछियन्हु ।

रुक्मी— त आबओ ।

राजा—दौवारिक ! कलहवर्धन नामक घटककेँ बजाबह ।

दौवारिक - जे सरकारक आज्ञा । (बहार भय हुनक संग अबैत छथि ।)

(तखन कलहवर्धन प्रवेश करैत छथि ।)

कलहवर्धन - गीतसं० - १२

सब तह = सबसँ । परिनाम = फल । विग्रह = विरोध । साखा = वंशक

---

२ - ममैव - ख । ३ - प्राधान्यमस्त्याऽवश्यं - ख । ४ - सम तँह - ख ।

घटना करिअ हमहि सबे ठाम ।
काज एकओ न होअ परिनाम ॥
जकरा कथा रहिअ हमे ठाड़ ।
तकरा हरि सओं[5] विग्रह बाड़ ॥
साखा मूल कुलिन अकुलीन ।
सबक विवेचन हमर अधीन ॥
नृप सिसुपाल अपन हित जोहि ।
कुमर[6] निकट पठाओल मोहि ॥
सुमति रमापति कौतुक गाव ।
सिंह नरेन्द्र भूप बुझ भाव ॥

(नृपसमीपं गत्वा) महाराज ! कथमाहूतोऽस्मि ?

राजा—घटकाधिप ! रुक्मिण्या विवाहार्थं विचारः करणीयः । तत्र के राजानः स्वजनाः सन्ति ?

कलह०—संक्षेपेणैव श्रोतव्यम्—

शिशुपालः सुनीथश्च दन्तवक्रो विदूरथः[7] ।
शाल्व[8]श्चापि जरासन्धो वेणुदारिनृपादयः ॥७॥

राजा—यादवाश्च कथं नोक्ताः ?

कलह०—ते तु बहुदोषदुष्टाः ।

भेद । मूल = मूलग्राम । जोहि = ताकिकें । कुमर निकट = रुक्मीक लग ॥

(राजाक समीप जाय) महाराज ! कोन काजें हम बजाओल गेल छी ?

राजा - घटकराज ! रुक्मिणीक विवाहक हेतु विचार करबाक अछि । ताहिमे के राजासभ अपनलोक छथि ?

कलह० - संक्षेपहि मे सुनल जाय शिशुपाल, सुनीथ, दन्तवक्र, विदूरथ, शाल्व, जरासन्ध ओ वेणुदारि इत्यादि राजा स्वजन छथि ॥७॥

राजा - एहिमे यादव कियेक नहि कहल गेलाह ?

कलह० - ओ लोकनि तँ बहुत दोष सभ सँ दूषित छथि ?

---

५ - सों । ६ - कुमरक - क, कुमर - ख । ७ - दन्तवक्त्रो विदरथः - ख ।
८ - शाल्व - ख ।

राजा—कस्य कीदृशो विनयः ?

कलह०—सर्वे विनीताः सन्ति । तेष्वपि दमघोषतनयस्य चेदिपते र्महाराज-शिशुपालस्याधिको विनयः ।

राजा—कथय ।

कलह०—श्रूयतां तद्वाचिकम् :—

[गीतसं०---१३]

करयुग जोड़ि नमित भय, कहब निवेदन मोर ।
भीषमदेव नृपति सओं, रुकुमिनि हेतु निहोर ॥
विमल वंस तुअ सबतहु, कीरति के नहि जान ।
धरमे करमे तोहें आगर, हमे तुअ दास समान ॥
जइअओ तरास होअ मन, तइअओ कहिअ पुनु तोहि ।
रुकुमिनि जनम दिवस सओं, आसा बाढ़हि मोहि ॥
से मोर पुरिअ भूपति, निज सरणागत जानि ।
बड़ जन हृदय सदय थिक, ताहि न मनै गुन हानि ॥
परिजन कोप रहित हमे, सेना[9] लइए सहाय ।
सतत रहब कुण्डिनपुर, किंकर अनुग कहाय ॥
नृप सिसुपाल विनय गति, सुमति रमापति भान ।
रस बुझ मैथिल भूपति, सिंह नरेन्द्र सुजान ॥

राजा - पूर्वोक्त राजा सभ मे किनक केहन विनय छनि ?

कलह० - सभ विनीत छथि । ताहू मे दमघोषक पुत्र चेदिराज महाराज शिशु-पालक विनय अधिक अछि ।

राजा - कहह ।

कलह० - हुनकहि शब्द मे सुनल जाय—

गीतसं० १३

करयुग = दुनू हाथ । नमित = नम्र । निहोर = नेहोरा, प्रार्थना । कीरति = कीर्त्ति, यश । तरास = त्रास, डर । निज = निज, अपन । परिजन = परिवार । किंकर अनुग = अनुगामी सेवक ॥

---

९ - सएना - ख ।

(राजा१० तूष्णीं स्थितः)

रुक्मी—अहो ! विनयातिरेकः । अहो ! माधुर्यं वचनसंविधानस्य । महाराज ! अतएव मया उच्यते असमेव वरो विधेयः इति ।

कलह०—यदाह युवराजस्तदेव कर्त्तव्यम् ।

राजा—द्वितीयमपि घटकमानीय विचारये । दौवारिक ! आहूयतां हरिवल्लभशर्मा यादवानां घटकः ।

(दौवारिको गत्वा तेन सहायातः । ततः प्रविशति हरिवल्लभः)

हरिवल्लभः— [गीत सं०---१४]

हमे हरिवल्लभ घटनाकार ।
यादव कुल थिक हमर बिचार ।।
घटनक कथा करिअ हमे थोड़।
अलपहि काल कराविअ जोड़ ।।
रुकुमद कुमर११ जे वर चाह ।
रुकुमिनि सञो नहि तनिक१२ विवाह ।।
हरिपद प्रनत रमापति भान ।
रस बुझ सिंह नरेन्द्र सुजान१३ ।।

(राजा चुप रहैत छथि ।)

रुक्मी—अहो ! अतिशय विनय, वाह ! वचन-रचनाक मधुरता ! महाराज ! तें हम कहैत छी—हिनके वर बनाउ ।

कलह०—जे युवराज कहैत छथि सएह कयल जाय ।

राजा—दोसरो घटककें आनि विचारैत छी । दौवारिक ! बजाबह हरिवल्लभ शर्मा नामक यादवक घटककें ।

(दौवारिक जाय, तनिक संग अबैत छथि । तखन हरिवल्लभ प्रवेश करैत छथि ।)

हरिवल्लभ— [गीतसं०—१४]

घटनाकार=विवाह ठीक करयवला, घटक । अलप =थोड़हि ।।

(राजाक समीप जाय शुभाशिष दैत छथि ।)

---

१० = ००० - 'ख' । ११ - कुमर—खा १२ – तनिहक-ख । १३-समान क ।

(नृपसमीपं गत्वा शुभाशीः ददाति ।)

राजा - (प्रणम्य विनयातिरेकं करोति ।)

कलह०—(साभ्यसूयं जनान्तिकम्) कुमार ! मयि कोऽपि नाऽऽदरः कृतः, अस्मिन् घटकापसदे कथमादरातिशयः ?

रुक्मी—आदरादेव भाविनं कार्यमनुमापयति प्राज्ञः, तेन कृष्णपक्षपातीव तातस्य हृदयमवगच्छामि । भाषणादेवाभिव्यक्ति र्भविष्यति ।

हरिवल्लभः—महाराज ! किमर्थमाहूतोऽस्मि ?

राजा—रुक्मिण्यर्थं को वा महीपः पक्षपातार्हः ?

हरिवल्लभ—(जनान्तिकम्)

उत्पत्ति-स्थिति-संहारहेतु र्गरुडवाहनः ।
उचितस्तव जामाता श्रीकृष्णो जगदीश्वरः ।।८।।

राजा - भद्रम् । ममाभिप्रेतमेव भवद्वचनं, किन्तु दुर्विनीतो मम कुमारस्तत्प्रातिपक्षम् आचरति ।

(राजा प्रणाम कय अतिशय विनय करैत छथि ।)

कलह०—(ईर्ष्या सहित कनफुसकी) कुमार ! हमरा विषय मे कोनो आदर नहि कयलनि । एहि नीच घटकक बेरि मे कियेक अतिशय आदर करैत छथि ?

रुक्मी - आदरहि सँ भावी कार्यक अनुमान लगबैत छथि विद्वान्, ताहिसँ बुझि पड़ैछ जे पिताक हृदय कृष्णक पक्षपाती छनि । गप्पे सँ स्पष्ट होयत ।

हरिवल्लभ - महाराज ! कोन काजक हेतु हम बजाओल गेल छी ?

राजा - रुक्मिणीक लेल के राजा स्वीकार करबाक योग्य छथि ?

हरिवल्लभ - (कनफुसकी कय) संसारक उत्पत्ति स्थिति ओ नाशक कारण गरुड़वाहन (गरुड़क सवारीवला) जगदीश्वर श्रीकृष्ण अहाँक जमायक योग्य छथि ।।८।

राजा - बड़ बढ़ियाँ । हमर सम्मते अहाँक वचन अछि, किन्तु अशिष्ट हमर कुमार तकर विरुद्ध आचरण करैत छथि ।

हरिवल्लभः – (कुमारसमीपं गत्वा) जयति जयति कुमारः ।

रुक्मी – भवद्भ्यां रहसि विचार्यताम् ।

(उभौ तथा कुरुतः । तत्र –)

हरिवल्लभः – (जनान्तिकम्) को वा वरो विचारितः ?

कलह० – दमघोषतनयः । भवता को वा विचारितः ?

हरिव० – वासुदेवः ।

कलह० – (सक्रोधं) जरायां बहवो दोषा इति सम्यगुक्तमभियुक्तैः । यतः,

सर्वे ते यदुवंशजा नृपपदभ्रष्टाश्च तत्राऽप्यसौ
गोपालैः परिपोषितो[14] बहुदिनं गोवत्ससंरक्षकः ।
गोपस्त्रीरमणोत्सुको वृषभहा स्त्रीघातको बन्धुहा[15]
कृष्णो भूपसुता-करग्रहविधौ कस्मात् त्वया सम्मतः ॥९॥

हरिवल्लभः—शृणु रे मूर्ख ! त्वया न परिचीयते देवदेवः

हरिवल्लभ – (कुमारक लग जाय) कुमारक जय हो ।

रुक्मी – अहाँ दुनू घटक एकान्त मे विचारू ।

(दुनू तहिना करैत छथि ।)

हरिवल्लभ – (कनफुसकी कय) कोन वरकेँ अहाँ सोचने छी ?

कलह० – दमघोषक पुत्र । आ अहाँ किनक विचार कयने छी ।

हरिवल्लभ – वासुदेव ।

कलह० – (क्रोधपूर्वक) बुढ़ारी मे बड़ बड़ दोष होइत छैक से मान्यलोकनिक
कहल ठीके छनि । कियैक त :-

ओ सभ यदुवंशी, राजाक पदसँ च्युत अछि, ताहू मे ओ गोआर
सभ सँ बहुत दिन धरि पोसल गेल, गाय बच्छाक चरबाह, गोआरक
स्त्रीक संग रमण करबामे उत्सुक, बड़दक हत्यारा, स्त्री (पुतना)क
घातक, बन्धु (कंस)क हत्या कयनिहार कृष्ण एहि राजाक पुत्रीक
विवाह मे अहाँक द्वारा कोना उपयुक्त बुझल गेल ? ॥९॥

हरिवल्लभ – सुन रे मूर्ख ! तोँ कृष्ण केँ नहि चिन्हैत छहुन्ह, :-

---

14 – परितोषित – क ख । 15 – बन्धुसा – ख ।

भूपालास्तव सम्मता नरपशो ! दैतेयदेहाः क्षितौ
सम्भूताः शिशुपाल-शाल्व[16]-मगधाधीशादयः सन्ति ये ।
तेषामेव विनिग्रहाय जगतामादि र्यदो र्वल्लभः
श्रीकृष्णो रमतेऽधुना मधुरिपु[17] र्लब्धावतारो भुवि ॥१०॥

अपि च,

गोपास्ते दिव्यदेहाः सुकृतबहुयुतो नन्दगोपः प्रजेशो
गोप्यस्ताश्चाऽप्सरोंऽशा व्रजभुवि जनिता देवराजानुमत्या ।
कंसोऽरिष्टश्च दैत्यः कपटधृततनुः पूतना बालहन्त्री
यस्मिन् दोषास्त्वयोक्तास्त्रिभुवन-महिते[18]माधवे ते गुणाः स्युः ॥११॥

कलह० - धिग् वृद्धापसद ! सत्वरं प्रयाहि यावद् युवराजेन न[19] श्रुतमस्ति ।

हरि० - अरे बालिश[20] ! नूतनघटक ! कुमारसमीपेऽपि वक्तव्यमेवैतत् ।

ऐ मनुष्यमे पशुस्वरूप ! तोहँ सम्मत राजासभ पृथ्वी
पर दैत्य देह धारणकय उत्पन्न भेल शिशुपाल, शाल्व, मगधराज
(जरासन्ध)आदि जे केओ अछि तकरहि सभक मारबाक हेतु संसारक
आदिस्वरूप यदुवंशीक प्रिय मधुसूदन श्रीकृष्ण एखन पृथ्वी पर अव-
तार लय रमण करैत छथि ॥१०॥

आओरो -

ओ गोपलोकनि अलौकिक देहधारी थिकथि, बहुतो पुण्य सँ युक्त नन्द
गोप प्रजापति (ब्रह्मा) थिकाह, ओ गोपीसभ अप्सराक अंश थिकीह जे
देवराज इन्द्रक आज्ञा सँ व्रजभूमि पर जन्म लेने छथि । कंस दैत्य
अशुभ कर्म तथा छल सँ शरीरधारिणी पूतना बालकक हत्यारिन
छल । जाहि त्रिभुवन-पूजित माधव मे तोँ जे दोष कहलह अछि से
सभ गुण थिकनि ॥११॥

कलह० – धिक् नीच वृद्ध ! भाग दय भागह यावत् युवराज ई बात नहि सुन-
लथुन्ह अछि ।

हरिवल्लभ - अरे नादान ! नवसिखुआ घटक ! कुमारहुक लग ई कहबे करब ।

16...शाल्..ख । 17 – मुररिपु - ख । 18---सहिते - ख । 19 - X...ख ।
20 - बालनूतन - क ।

(इति कलहायमानौ कुमारनिकटमागत्य स्वं स्वं वाच्यमर्थमावेदितव-न्तौ । तत्र प्रथमं कलहवर्धनः—)

कलह० -　　[गीतसं०---१५]

कुमर सुनिय[21] हमर विचार ।
जे वर कयने अछि उपकार ॥
नृप[22] दमघोष - तनय शिशुपाल ।
जसु पद प्रणत बहुत भुपाल ॥
कुल विक्रमे तुअ थिकथि समान ।
तसु सम विनय कथा के जान ॥
सौम सुनीथ जरासन्ध[23] राज ।
सभकाँ अभिमत अछि ई काज ॥
घटना रीति रमापति गाव ।
सिंह नरेन्द्र भूप बुझ भाव ॥

रुक्मी भवता सर्वं सम्यगाज्ञप्तम् । (हरिवल्लभं प्रति)भवानपि कथयतु ।

हरिव० --　　[गीतसं०--१६]

हमर विचार सुनिअ युवराज ।
त्रिभुवन - नायक थिक यदुराज ॥

(एवं झगड़ा करैत दुहू घटक कुमारक लग आबि अपन कथ्य अर्थ आवेदित कयलनि । ताहिमे पहिने कलहवर्धन कहैत छथि ।)

कलह० -　　गीतसं० - १५

नृप=राजा । दमघोष तनय=दमघोषक पुत्र । जसु पद= जनिक पयर पर । विक्रमे=पराक्रम सँ । अभिमत=अभीष्ट, मनक अनुकूल ॥

रुक्मी - अहाँ सब किछु उचिते कहल अछि । (हरिवल्लभक प्रति) अहूँ कहू ।

हरिवल्लभ -　　गीतसं० - १६

त्रिभुवन नायक=तीनू लोकक नेता । यदुराज=श्रीकृष्ण ।

---

21 - सुनिर्अ - ख । 22 - नृपति घोष - क । 23 - जरासुत - क ।

हरषित भइए करिअ वर ताहि ।
शम्भु विरञ्चि प्रणत रहु जाहि ॥
तसु गुन कथन करत के आज ।
कहय न पावथि पन्नगराज ॥
नृप शिशुपाल असुर अवतार ।
ताहि करब वर कोन विचार ॥
हरिपद प्रणत रमापति भान ।
रस बुझ सिंह नरेन्द्र सुजान ॥

रुक्मी - (हरिवल्लभं प्रति सकोपम्) गच्छतु भवान् मत्सकाशात् ।

हरिव० - (सत्रासं नृपसमीपमागत्य) महाराज ! किं वक्तव्यं मया वासुदेवं प्रति ।

राजा -
देव्या मया च मनसा परिकल्पितोऽसौ
पाणिग्रहे यदुपतिर्दुहितुः पतिर्मे ।
भूयाद्, अथाऽशुभमतिः शिशुरेष भूया
प्रत्यूहमाचरति, किं करणीयमत्र ॥१२॥

तथापि सम्प्रति स्वयंवरोद्योग एव श्रेयस्करः । तस्मिंश्च यथा भग-वान् आगमन-प्रसादमाचरति तथा विधेयं भवद्भिः ।

विरञ्चि=ब्रह्मा । पन्नगराज=सर्पराज शेषनाग । असुर= दैत्य ।

रुक्मी - (हरिवल्लभक प्रति क्रोधपूर्वक) जाउ अहाँ हमरा लग सँ ।

हरिवल्लभ - (डरायल राजाक लग आबि) महाराज ! की कहबनि हम श्रीकृष्ण कें ?

राजा - महारानी ओ हम मन में हुनके निश्चय कयने छी जे एहि विवाह मे हमर पुत्रीक पति श्रीकृष्ण होथि । मुदा, दुर्मति ई हमर कुमार बारंबार बाधा उपस्थित करैत छथि । एहना स्थिति मे एतय की करबाक चाही ? ॥१२॥

तैयो स्वयंवरक उद्योग करब नीक होयत । ताहि मे जाहिसँ भगवान् श्रीकृष्ण अयबाक कृपा करथि से अपने लोकनि कयल जाय ।

हरिव०—एवं भविष्यति । (इति निष्क्रान्तः) ।

रुक्मी—(नृपसमीपमागत्य सक्रोधं गीतेन वाच्यमावेदयति ।)

अथ गीतम् सं०—१७

हमर विचार सुनिअ महराज ।
एहन विचार देल कोन काज ॥
तेजि सकल समकक्ष भुपाल ।
श्रवनहुँ सुनिञ किओ[२४] गोपाल ॥
गोप सबहुँ परिपालल[२५] जाहि ।
नृपति सुता पति के कहु ताहि ॥
गोपवधू सङ्गे सतत विहारु ।
मातुल वध नहि जाहि विचारु ॥
तिरिवध गोवध जाहि न भीति ।
ताहि करब वर ई कोन रीति ॥
रुमर कथन रमापति भान ।
रस बुझु सिंह नरेन्द्र सुजान ॥

राजा—अस्त्येतत् किन्तु श्रुतं मया सज्जनेभ्यः (गोपास्ते दिव्यदेहा" इति पद्यं [श्लोक सं०११] पठति) । यदि एतया[२६] तस्य

हरिवल्लभ—एहिना होयत । (बहार होइत छथि) ।

रुक्मी—(राजाक समीप आबि क्रोधपूर्वक गीतक द्वारा अपन आशय कहैत छथिन)

गीत सं०—१७

तेजि = छाड़ि । समकक्ष = तुल्य । श्रवनहुँ = कानहुँ सँ । गोपाल = कृष्ण । नृपति सुता पति = राजपुत्रीक स्वामी । विहारु = रमण करैत अछि । मातुलवध = मामक हत्या । तिरिवध = स्त्रीवध (पूतनाक हत्या) ।

राजा—ई बात अछि, मुदा हम सुनल अछि सज्जनलोकनिक मुहेँ ("गोपास्ते दिव्यदेहा" श्लोक सं० ११ पढ़ैत छथि) । यदि हिनका (रुक्मणीक)

२४—सुनिञ कोए—ख । २५—परिपालन—क ख ।
२६—यदि तया तस्योद्विवाहो—क; यद्यनेन तस्योद्विवाहो—ख ।

विवाहो न भविष्यति तदा यादवीयं सैन्यमानीय बलात् तव भगिनीं परिहृत्यापि कृष्णः[२७]परिणेष्यतीत्यपि श्रूयते ।

रुक्मी—किंवदन्ती-वाक्यमात्रमेतत् । चेत् सत्यमेतत् पौरुषमाकलयतु तातः । (धनुर्बाणमवलोक्य दन्तैरधरं सन्दश्य च):—

[गीतसं०—१८]

जखने धरब हम बान सरासन, होयत गुण टंकार ।
सम्मुख हमर रहत के यादव, सरेँ पुरब संसार ॥
कहु राजकुमार[२८], हमेँ न करबे वर नन्द-कुमार ॥ध्रु०॥
पाँच सहोदर सकल अस्त्र लय, करब समर आरम्भ ।
से देखि रिपुगण त्रास-जुगुत मन, तेजत भुजबल दम्भ ॥
दन्तवदन, शिशुपाल, विदूरथ, बहुविधि करत उपाय ।
सोम, सुनीथ, जरासन्ध नरपति, ई सब हमर सहाय ॥
नृप-सिंहासन जे नहि पाबय, चामर छत्र विहीन ।
गोपतनय वर, भुपति के कर, जे कुल होअ मलीन ॥
रुमर जे किछु कहल जनक सोँ, सुमति रमापति गाब ।
सिंह नरेन्द्र विदेह-महीपति, रसबिन्दक बुझ भाव ॥

संग हुनक विवाह नहि होइत छनि त यादव सेना आनि बलजोरी अहाँक बहिनिक हरणो कय कृष्ण विवाह कय लेताह से सुनल आइछ ।

रुक्मी—ई जनश्रुतिक बातये (अफवाहे) थिक । जँ ई सत्य हो तँ अपन बलक अन्दाज लगाउ पिताजी । (धनुष-बाण देखि दाँत सँ ठोरकेँ पिचैत)—

गीतसं०—१८

सरासन = धनुष । गुण-टंकार = धनुषक डोरीक कड़-कड़ाहटि । सरेँ = बाण सँ । नन्द-कुमार = कृष्ण । समर = युद्ध । रिपुगण शत्रु सभ । त्रास जुगुत = भययुक्त । दम्भ = अहंकार । दन्तवदन = दन्तवक्त्र आदि राजा सभ । नृपसिंहासन = राजाक सिंहासन । गोपतनय गोआरक पुत्र । रुमर = रुक्मी । रसबिन्दक = रसक प्राप्त कयनिहारि ।

२७—परिणयिष्यती—क ख । २८—कुमार—ख ।

राजा – ("भूपालास्तव सम्मता" इति पद्यं [श्लोक सं० १२, पठति) अतएव [२९]मयोच्यते जगदीश्वरेण सह कथं विग्रहो विधेय इति। किन्तु युवराजानुमत्यैव रुक्मिण्याः पाणिग्रहणमाचरतु देवदेव।

रुक्मी – (सक्रोधं) कन्याप्रदाने जनकस्येच्छा प्रधानेति यथा रोचते तातय तथाऽऽचरणीयम्। मया तु भवद्राजधान्यां न स्थेयम्। (इति धनुर्बाणमादाय प्रचलितः)।

तत्र गीतम् [सं० १६]

जनक वचन सुनि कोपित भय मन, धटकराज लय साथ।
काढ़ि[३०] त्रिभुवन सकल मनोहर, चाप बाण गहि हाथ॥
हसि चलल कुमार; हम नहि सनबे एहन विचार॥ध्रु०॥
जदुपति दोष सकल, हम भाषल, तातै न राखल कान।
हरिहि करथु वर, हमे छाड़ब घर, जायब जनपद आन॥

राजा – (भूपालास्तव" श्लोक सं० १२ एहि पद्यकें पढ़ैत छथि।) अतएव हम कहैत छी जे संसारक ईश्वर श्रीकृष्णक संग झगड़ा कयनाइ कोना उचित होयत। किन्तु युवराजेक विचारें रुक्मिणीक हाथ धरथु देवदेव श्रीकृष्ण।

रुक्मी – (क्रोधपूर्वक) कन्यादान मे पिताक इच्छा प्रधान होइत छैक तें जे नीक लागय से करू। हम त अहाँक राजधानियहु मे नहि रहब। (धनुष बाण लय चलि दैत छथि।)

गीतसं० – १६

जनक वचन = पिताक बात। कोपित = क्रुद्ध। काढ़ि = उतारि। चाप = धनुष। जदुपतिदोष = कृष्णक दुर्गुण। भाषल = कहल। तातै = पिता। हरिहि = कृष्णहिकें। जनपद आन = आन देश। चेदिराज = चेदि देशक राजा दमघोषक पुत्र। तन्हि तजि = तनिका छोड़ि। गोप तनय = गोआरक बेटा श्रीकृष्ण। जनक अवधान = पिताक ज्ञान। कोपक परिनति = क्रोधक परिणाम॥

---

२९ – × - ई पंक्ति 'ख' मे नहि अछि। ३० – काढ़ि – क।

चेदिराज दमघोषक नन्दन, जे थिक हमर समान।
तन्हि तजि गोपतनय वर भाषथि, बुझल जनक अवधान॥
कमर दुरमति, कोपक परिनति, सुमति रमापति भान।
सिंह नरेन्द्र सकल गुन आगर, बुझ नृप परम सुजान॥

राजा—(उत्थाय सानुनयं प्रतिनिवर्त्य) वत्स! युवराजानुमत्यैव मया सर्वं कार्यं विधेयं, किन्तु तवाभिमतमवगन्तुं तथोक्तम्। अन्यच्च, क्षत्रियाणां कुमारिका-परिणये स्वयंवरोऽपि पुरस्कृत एव यत्र[३१]स्तत्र विधातुः कुमारिकायाश्चेच्छा। एवं कृते कलहाशङ्का तु [३२]निवृत्तैव भविष्यति।

रुक्मी—[३३]महाराज! सम्यगेतत्। तर्हि राजन्योपनिमन्त्रणाय क्रियतामुद्योगः।

राजा—[३४]यादवानां निमन्त्रणे को विमर्शः?

रुक्मी—तेऽपि निमन्त्रणीयाः।

राजा – (ऊठि सान्त्वना दैत घुराय) बाउ। युवराजक अनुमतिअहिसँ हम सभ काज करब, मुदा अहाँक अभिप्राय बुझबाक हेतु ताहिरूपें कहल। दोसरो बात, क्षत्रियसभकें कुमारीक विवाहमे स्वयंवरो तँ प्रसिद्ध मन्त्र अछि ताहिमे विधाताक ओ कुमारीक इच्छा काज करैछ। एना कयला पर झगड़ाक आशंका तँ समाप्त भय जायत।

रुक्मी - महाराज! ई उचित थिक। तखन राजालोकनिक बजयबाक उद्योग कयल जाय।

राजा - यादवलोकनिकें निमन्त्रण देबामे अहाँक की विचार?

रुक्मी – हुनुकोसभकें निमन्त्रण देल जाय।

---

३१ - भूनया 'ख'। ३२ - तै - 'ख', ० - 'क'। ३३ - ० - क।
३४ - ० - क।

राजा - कः कोऽत्र भोः ?

दौवारिकः - (प्रविश्य) एसोह्मि आणवेदु देओ । [एषोऽस्मि, आज्ञापयतु देवः ।]

राजा - आहूयतां झटिति गमनक्षमो ब्राह्मणो नापितश्च ।

(दौवारिकस्तथा करोति । ततः प्रविशति ब्राह्मणः)

गीतसं०--२०

के नहि जानय हमे द्विजराज । सतत करिअ हम भूपति-काज ॥

धवल तिलक, उपवीत विसाल । धौत बसन-युग कर जपमाल[35] ॥

ब्रह्मतेजें भुजबलें समजूत । आनिअ गमन उपाय बहूत ॥

अधिकें दिवसें पाबिअ जे देस । ततय तोरित जाइअ अकलेस ॥

सुमति रमापति कौतुक गाव । मैथिल नृप रसमय बुझ भाव ॥

द्विजः—महाराज ! शुभानि सन्तु । किमर्थमाहूतोऽस्मि ?

राजा—(प्रणम्य) द्विजराज ! रुक्मिण्याः स्वयंवरार्थं राजानो निमन्त्रणीयाः । तत्र त्वया मथुरापुरीं गत्वा देवदेवः श्रीकृष्णो यादवैः सह निमन्त्र-

---

राजा—क्यो अछि ?

दौवारिक—(प्रवेश कय) इथेह छी। आज्ञा देल जाय सरकार ।

राजा - बजाउ झटदय जयबामे पटु ब्राह्मणलोकनिकें आ नौआसबकें ।

(दौवारिक तहिना करैछ । तखन ब्राह्मण प्रवेश करैत छथि ।)

गीतसं० - २०

हमे द्विजराज = हम ब्राह्मणमे श्रेष्ठ छी से । धवल = उज्जर । उपवीत = जनउ । धौत बसन युग = धोअल एक जोड़ वस्त्र । कर = हाथमे । समजूत = संयुक्त । गमन = जयबाक । तोरित = शीघ्र । अकलेस = सुगमता सँ ॥

द्विज—महाराज ! शुभ हो । कोन प्रयोजन सँ बजाओल अछि ?

राजा—(प्रणाम कय) द्विजराज ! रुक्मिणीक स्वयंवरक हेतु राजालोकनिकें निमन्त्रण देबाक अछि । ताहि मे अहाँ मथुरापुरी जाय देवदेव

---

३५ - जयमाला - ख ।

णीयः । प्रेषणीयाश्चान्ये [36]तरस्विनो विप्रा नानादेशस्थ-नृपनिमन्त्रणाय ।

द्विजः—सर्वथाऽऽचरणीयं मया नृपकार्यमिदम् । किन्तु प्रत्येकं तत्तज्जनपदानां नामापि वक्तव्यं देवेन ।

राजा—(गीतेनाऽऽदिशति—)

[गीतसं०--२१]

हे द्विज ! करिअ हमर उपकार ।

ई सबे जनपद तोरित गमन करि [37]न्यौतिअ भूप-कुमार ॥

अङ्ग बङ्ग गुजरात ओड़इसा, बस्तर कच्छ कलिङ्ग ।

द्राविड मरहट केरल सोरठ, कारनाट तैलङ्ग ॥

देश रतनपुर आओर नागपुर, मालव कटक असाम ।

देओगढ़ गाढ़ा नगरी बाड़ा[38], राजमहल सुखधाम ॥

मगह मलापुर अओर भोजपुर देश सरैसा[39] बसार ।

बलियावासी नगरी कासी, जे थिक त्रिभुवन सार ॥

अन्तरबेग प्रयाग मनोहर, मथुरा गुनक निधान ।

अयोध्य कनओज नगर कुमाँचल ओएल के नहि जान ॥

नगरकोट श्रीनगर उजागर, मोरंग चीन नेपाल ।

मारुआर हस्तिनपुर जयपुर पाटलिपुर सुविशाल ॥

श्रीकृष्णकें यादव सहित निमन्त्रण देब । आ आन शीघ्रगामी ब्रह्मणलोकनिकें नाना देशक राजाक ओहिठाम निमन्त्रण देबाक हेतु पठाउ ।

द्विज—हम समस्तराहेँ राजाक एहि काजकें सम्पादित करब । किन्तु, ताहि ताहि प्रत्येक देशक नामो बाजल जाओ महाराज ।

राजा—(गीत सँ आदेश दैत छथि)

गीतसं० - २१

द्विज = ब्राह्मण । जनपद = देश । तोरित = शीघ्र । अङ्ग = भागल-

---

३६ - तरस्विनो - ख । ३७ - कय - ख । ३८ - बाड़ा - ख ।

३९ - सरं सबे सार - ख ।

मध्यभूमि मिथिला अतिसुन्दर, जनक-महीपति-देश ।
आगम निगम पुरान विवेचन, द्विजगन कर अकलेश ॥
जेहओ कहल नहि से सभ नेओतय, निजमन करि अवधान ।
रुकुमिनि कुमरि स्वयंवर कारने, सुमति रमापति भान ॥

द्विज—महाराज[४०] ! परन्तु, सर्वत्र किं वक्तव्यमिति तत्र तत्राऽस्माभिः ?

राजा—(पत्रं वाचयति)—

भूयो भूयो भीष्मकः कुण्डिनेशो
नत्वा नत्वा वेदयत्येष भूपान् ।
शास्त्रे शास्त्रे दानकार्ये च दक्षान्
श्रद्धातव्यं मद्वचोऽनुग्रहेण ॥१३॥

स्वयंवरो मे दुहितुः शुभे दिने
वैशाख - शुक्ले भवितेति मत्वा ।
सम्पाद्यतामेत्य[४१] भवद्भिरत्र स[४२]
दयालुभिस्तत्[४३] किल सप्तमी बुधे ॥१४॥

द्विजः—एष गच्छामि । (इति प्रचलितः ।)

पुर । अवोध = अवध । आगम निगम पुरान = तन्त्र वेद ओ पुराण । अकलेस = अनायास । अवधान = ऊहि ।।

द्विज—महाराज ! परन्तु, सभ ठाम हमरालोकनि की बाजब से कहल जाय ।

राजा—(पत्र बचैत छथि)—

कुण्डिनपुरक राजा भीष्मक बारंबार प्रणाम कय सकल शास्त्र मे ओ दान मे पटु राजालोकनि कें सूचित करैत छथि जे हमर वचन पर कृपा कय श्रद्धा करी ॥१३॥

हमर पुत्रीक स्वयंवर शुभ दिन वैशाख शुकल सप्तमी बुध कें होयत से बूझि दयालु अपनेलोकनि ताहिमे आबि एकरा सम्पन्न कराबी ॥१४॥

द्विज—इयेह जायब । (विदा भेलाह ।)

४०—महाशय—ख । ४१—सम्पाद्य साग्रह—ख । ४२—×—ख ग । ४३—दयाऽन्वितैस्तत्—क ।

राजा— अहमप्यन्तःपुरं गत्वा स्वयंवरोद्योगं देव्यै निवेदयामि ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति रुक्मिणीपरिणये स्वयंवरोद्योगो नाम द्वितीयोऽङ्कः ॥

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति श्रीकृष्णः)

[गीत सं० – २२

हेरइत हर भवभीति कलेस । अतिसुखदायक हरि - परवेस ॥
कनक - रतनमय मुकुट विराज । मकराकृति कुण्डल श्रुति छाज ॥
इन्द्रनील - मणि सम तनु कांति । मलयज अनुलेपन बहु भांति ॥
वदने[१] विनिन्दित सारद चन्द । लोचन युगले अरुन अरविन्द ॥
रोचन तिलक ललाट विसाल । पीत वसन - युग उर वनमाल ॥

राजा—हमहूँ अन्तःपुर जाय स्वयंवरक उद्योग देवीकें बुझबैत छियनि ।

(सभ बहार भेल)

रुक्मिणीपरिणय मे स्वयंवरोद्योग नामक द्वितीयअंक समाप्त ॥

तृतीय अंक

(तखन श्रीकृष्ण प्रवेश करैत छथि ।)

हेरइत हर = देखितहि हरण करैत छथि । भवभीति कलेस = संसारक भय ओ व्यथा । कनक = सोना ओ रत्नजटित । मकराकृति = मोहिक (माछक) आकृतिवला । श्रुति = कानमे । तनु कांति = देहक कान्ति । मलयज अनुलेपन = श्रीखण्ड चानन । सारद = शारदक । अरुन = लाल । वसन-युग = एक जोड़ वस्त्र । उर = छाती पर । वनमाल = गरा सँ ठेहुन धरिक मा ला । अङ्गद =

---

१ – बदन—क ।

अङ्गद वलय, रसन मञ्जीर । विविध विभूषण सोभ सरीर ॥
विमल नखत सम मोतिम हार । जनि बह गगन गङ्ग दुइ धार ॥
कओन[2] करब तनु रूप बखान । हरिपद प्रनत रमापति भान ॥

श्रीकृष्णः—(सभागृहमागत्य विलोक्य च) कः कोऽत्र भोः ।
दौवारिकः—(प्रविश्य, शिरसा प्रणम्य) एसोह्मि आणवेदु देवदेओ ।
[एषोऽस्मि, आज्ञापयतु देवदेवः ।]
श्रीकृष्णः—सभार्थं शय्या आस्तरणीया, रक्षणीयानि च हिरण्मयान्यासनानि ।
दौवारिकः—मए पढमं ज्जेव सव्वं उवणीदं । सम्पदं उण भद्दं वित्थरीअदि ।
[मया प्रथममेव सर्वमुपनीतम् । साम्प्रतं पुनः भद्रं विस्तार्यते ।]
श्रीकृष्णः—सम्यक् कृतम् । अतः परम् आर्यस्य पन्थानमवलोकय[3] । कथं विचारितमार्येण ?
दौवारिकः— किञ्चिद् दूरं गत्वा विनिवर्त्य सानन्दं) एसो आअच्छदि बलदेओ । [एष आगच्छति बलदेवः ।]

अंगद—बाँहिक गहना । वलय = मठ्ठा । रसन = डँरकस । मंजीर = नूपुर । नखत = तरेगन । गगन = आकाश मे (मोतीक मालाक स्वच्छता दु गङ्गा धारक उपमा मे) ।

श्रीकृष्ण—(सभाभवन आबि ओ देखि) क्यो अछि ?
दौवारिक—(प्रवेश कय माथ सँ प्रणाम कय) इयेह छी। भगवान् आज्ञा देथु ।
श्रीकृष्ण— सभाक हेतु ओछान बिछाबह, आ सोनाक आसन सेहो रखिहह ।
दौवारिक—हम तँ पहिनहि सबकिछु तैयार रखने छी । आब नीक जकाँ बिछाय दैत छियैक ।
श्रीकृष्ण—नीक कयलह । एकर बाद आर्य बलदेवक बाट देखह । आर्य की बिचारलनि ?
दौवारिक—(किछु दूर जाय घुरि आनन्दपूर्वक) इयेह बलदेव अबैत छथि ।

२—कौने—ख । ३ - लोकये - क; लोकय - ख ।

श्रीकृष्णः—दूरे समीपे वा ?
दौवारिकः—दुआर-समीवं उवगदो । [द्वारसमीपमुपगतः ।]
श्रीकृष्णः—(सहर्षं ससम्भ्रमं चोत्थाय) तर्हि द्वाराद् बहिरेव गत्वा तमवलोकयामि । (इति तथा करोति ।)

(ततः प्रविशति वक्ष्यमाण-स्वरूपो बलदेवः)

[गीत सं० — २३]

रिपु - बल- तिमिर विनाश दिनेस ।
रोहिणि - नन्दन देल परवेस ॥
गौर बरन तनु अति अभिराम ।
देखइतें भुवन[4] मनोहर राम ॥
नव नीरद सम नील दुकूल ।
विमल कनक - भूषण बहुमूल ॥
वारुणि - मदें घूम लोचन लाल ।
एक स्रवण - कुण्डल सुविसाल ॥
रस[5] लस ओठ नहि, काप सरीर ।
डोला रस सालस यदुवीर ॥

श्रीकृष्ण—दूर मे कि लगहि ?
दौवारिक—द्वारक समीप आबि गेलाह ।
श्रीकृष्ण—(सहर्ष हरबरायल ऊठि) तखन द्वारसँ बहारे जाय देखैत छियनि ।
(तहिना करैत छथि ।)

(आगू वर्णनीयरूप मे बलदेव प्रवेश करैत छथि ।)

गीत सं० - २३

रिपुबल = शत्रुक सेनारूपी अन्धकारक नाशक सूर्य । रोहिणिनन्दन = रोहिणीक पुत्र बलदेव । अभिराम = सुन्दर । भुवन मनोहर = संसार मे सुन्दर । राम = बलराम । नीरद = मेघ । दकूल = वस्त्र । बहुमूल = बहुमूल्य ।

---

४ - देखइत भूष - क । ५ - बसन सजोठ - क ख ।

हलधर रुच रमापति भान ।
सिंह नरेन्द्र सकल रस जान ॥

श्रीकृष्ण।—(समालिङ्ग्य[6] प्रणम्य च करे गृहीत्वा समुपवेश्य स्वयमपि समुपविश्य) दौवारिक ! विज्ञाप्यतां यादवैः सार्धं महाराज उग्रसेनः, समायात [7]आर्य इति ।

(स च तथा कृतवान् । ततः प्रविशति यादवैः सार्धं राजा उग्रसेनः । तत्र गीतम्:—)

[गीत सं--२४]

हरिपद[8] कमल मधुप मथुरेस ।
उग्रसेन भूपति परवेस ॥
कनक किरीटे मनोहर माथ ।
[9]चहुदिस यादवगन सबे साथ ॥
पृथु, कृतवर्म, विपृथु, अक्रूर ।
चक्रदेव, सत्यक अतिशूर ॥
चित्रक, सारन, वीर सुदेव ।
भङ्गकार[10], राजा अधिदेव ॥

वारुणि मदे = मदिराक उन्माद सँ । एक = अद्वितीय, अनुपम । स्रवन = कान मे । रस लस ओठ नहि = ठोर सुखायल छनि ।

हाला = मदिरा । आलस = अलसायल । यदुवीर = बलराम ॥

श्रीकृष्ण—(आलिङ्गन ओ प्रणाम कय हाथ धय बैसाय अपनहुँ बैसि) दौवारिक ! सभ यादव ओ महाराज उग्रसेनकेँ सूचित करहु जे आर्य (बलदेव) आबि गेलाह ।

(दौवारिक तहिना करैछ । तखन यादवसभक संग राजा उग्रसेन प्रवेश करैत छथि ।) ताहिठाम गीत—२४

हरिपद- कमल-मधुप = श्रीकृष्णक चरणकमलक भौंरा । मथुरेश = मथुराक राजा । कनक किरीटे = सोना ओ रत्न सँ । अरिसेन = शत्रुक सेना ।

६ - सालिङ्ग्य - ख । ७ - XxX - क । ८ - हरिक संग अपने मथुरेस - क । ९ - चौदिश - क । १० - तहु कारण राजा - क ।

गद, सातकि, शतद्युमन, प्रसेन ।
जसु भुजबले कम्पित अरिसेन ॥
मृदर, सुफल्क, विदूरथ, कङ्क ।
नृप बृहद्दुर्ग समर निस्संक ॥
निपुन गवेषन सतधनु वीर ।
निवृत्त शत्रु, आहव अतिधीर ॥
यादव सकल कहय के जान ।
हरिपद प्रनत रमापति भान ॥

बलदेव-श्रीकृष्णौ—(उत्थाय) इदं नृपसिंहासनमुपविश्य अलङ्करोतु महाराज उग्रसेनः ।

उग्रसेनः—यदाऽऽज्ञापयतो देवदेवौ । (इत्युपविशति) ।

श्रीकृष्णः—(बलदेवं प्रति) आर्य ! स्वागतं ते ।

बलदेवः—एवमेतत् ।

श्रीकृष्णः—तात ! नन्दादयः सुखेन सन्ति ?

बलदेव।—भवदीय गुणान् कीर्त्तयन्तो व्रजभुवि सर्वे सुखेनैव निवसन्ति ।

(ततः प्रविश्य दौवारिकः)

समर = युद्ध मे निपुन गवेषन सतधनु = चक्कर तकबा मे प्रवीण राजा शतधन्वा । निवृत शत्रु = शत्रु केँ परास्त कयनिहार । आहव = युद्ध मे ॥

बलदेव ओ श्रीकृष्ण—(उठि) एहि राजसिंहासन पर बैसि शोभित करथु महाराज उग्रसेन ।

उग्रसेन—जे आज्ञा देथि दुहु भगवान । (बैसैत छथि ।)

श्रीकृष्ण—(बलदेवक प्रति) आर्य ! अहाँक स्वागत हो ।

बलदेव—बेस ।

श्रीकृष्ण—तात ! नन्द आदि सुख सँ छथि ?

बलदेव—अहाँक गुणसभक गान करैत व्रजमे सभ सुखहि सँ बसैत अछि ।

(तखन दौवारिक प्रवेश कय)

दौवारिकः—देव ! एक्को दिअवरो [11]पदीहारभूमिए चिट्ठदि[12] । [देव एको द्विजवरः प्रतीहारभूमौ तिष्ठति ।]

श्रीकृष्णः—(स्वगतम्) तेन कुण्डिनपुरादागतेन भवितव्यम् । प्रागेव हरिवल्लभेनोक्तम् । (प्रकाशम्) द्रुतं [13]प्रवेशय । (ततः प्रविशति द्विजः । श्रीकृष्णं बलदेवं च प्रणम्य पत्रं श्रीकृष्णाय ददाति । स च बलदेवाय दत्तवान् ।)

बलदेवः—("भूयो भूयो" इत्यादि-पद्यद्वयं [श्लोकसं० १३,१४] वाचयति ।)

(सर्वे सादरमाकर्णयन्ति)

उग्रसेनः—द्विजराज ! कदा भविष्यति तद्दिनम् ?

द्विजः—अद्यारभ्य तृतीय-दिने । (श्रीकृष्णं प्रति) विशेषतस्तु वाचिकमभिहितं नृपभीष्मकेण ।

श्रीकृष्णः—वक्तव्यं तत् ।

द्विजः - (पद्यैरावेदयति -)

दौवारिक—देव ! एक ब्राह्मण दोआरि पर ठाढ़ छथि ।

श्रीकृष्ण—(मनहि मन) ओ कुण्डिनपुर सँ आयल होयताह । पहिनहि हरिवल्लभ कहने छलाह । (सुनाकय) जल्दी प्रवेश कराबह ।

(तखन ब्राह्मण प्रवेश करैत छथि । श्रीकृष्ण ओ बलदेवकेँ प्रणाम कय चिट्ठी श्रीकृष्णकेँ दैत छथि आ ओ बलदेव केँ दय देलनि ।)

बलदेव—('भूयो भूयो" श्लोकसं० १३,१४ दुनू पद्य बँचैत छथि ।)

(सभकेओ आदरपूर्वक सुनैत छथि ।)

उग्रसेन—द्विजराज ! कहिआ होयत ओ दिन ?

द्विज—आइ सँ लय तेसर दिन मे (श्रीकृष्णक प्रति) विशेष कय त मौखिक समाद कहलनि अछि राजा भीष्मक ।

श्रीकृष्ण—कहू से ।

---

११ - पवहार - ख । १२ - तिट्ठदि - ख । १३ - ० - ख ।

नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय यः[14]
सृजत्यवत्यत्त्यखिलं चराचरम् ।
भारावताराय भुवोऽधुना हरि-
र्लब्धाऽवतारो वसुदेव-मन्दिरे ॥१५॥

अपि च,

जानामि कृष्णं भगवन्तमाद्यं
जानात्यसौ नैव विमूढबुद्धिः ।
रुक्मी मदीयस्तनयो मदान्ध-
स्तत्राऽप्यवश्यं स्वकृपा[15] विधेया ॥१६॥

अपि च,

स्वयंवरेऽस्मिन् नरदेवसंकुले
पुरं समागत्य मदीयमेतत् ।
तथा विधेयं स मनोरथो यथा
दृष्ट्वा भवन्तं परिपूर्तिमेति मे ॥१७॥

द्विज - (पद्य सभक द्वारा आवेदित करैत छथि ।):—

ओहि जगदीश्वर के नमस्कार करैत छी जे सम्पूर्ण चर ओ अचर संसारक सृष्टि करैत छथि, पालन करैत छथि तथा भक्षण (संहार) करैत छथि । सएह हरि पृथ्वीक भार उतारबाक लेल वसुदेवक घरमे अवतार लेने छथि ॥१५॥

आओरो—

हम आदि ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् केँ जनैत छियनि । मुदा, हमर पुत्र मदसँ अन्ध मूर्ख रुक्मी नहि जनैत छनि । तैयो अपन कृपा अवश्य करबि ॥१६॥

आओरो -

मनुष्य ओ देवतासँ भरल एहि स्वयंबर मे हमर एहि नगर मे आबि तेना करी जाहि सँ हमर ओ मनोरथ अपनेकेँ देखि परिपूर्ण हो ॥१७॥

---

१४ - ० - ख । १५ - सुकृपा - ख ।

श्रीकृष्णः—तादृश-महाभागस्य इदमेव वक्तुमुचितम् ।

बलदेवः—अहो ! वाग्विधान-नैपुण्यं कुण्डिनेश्वरस्य[16] । द्विजराज ! अवश्यं यास्यामः । राजानः किं कुण्डिनं[17]समायताः ?

द्विजः—अथ किम् ? बहवो नृपाः गजाश्व-रथ-पदातिवृन्दैः सह तत्रैव मिलिष्यन्ति ।

बलदेवः—महाराज ! यादवाधिप ! सज्जीभवन्तु सर्वे चतुरङ्गबलैः सह यादवास्तत्र गमनाय ।

उग्रसेनः—देवदेव ! अनुजानीहि मां गृहं गत्वा तथाऽऽचरणाय । (इति यादवैः सह निष्क्रान्तः ।)

बलदेवः—ममापि सम्प्रति विश्रामाय गम्यते ।

श्रीकृष्णः यदभिरोचते भवते । (इत्युत्थाय तमनुनीय, पुनरुपविश्य च) द्विजराज ! कीदृशी वर्तते सा कुमारिका यामभिलक्ष्य सकल-राजन्यमण्डली प्रचलिता [18]कुण्डिनं प्रति, तदभिज्ञायते[19] भवता ?

श्रीकृष्ण :- ओहन महापुरुषक इयेह कहब उचित थिक ।

बलदेव :- अहो ! कुण्डिनक राजाक वचन-विन्यासक पटुता ! द्विजराज ! हमरालाकनि अवश्य जायब । राजासब कुण्डिनपुर पहुँचि गेलाह की ?

द्विज :- त आओर की ? बहुत राजा हाथी-घोड़ा-रथ-सेनासभक संग ओतहि भेटताह ।

बलदेव—महाराज यादवराज ! चारू अङ्ग रथ घोड़ा हाथी-पैदल संयुक्त सेनाक संग सकल यादव ओतय जयबाक हेतु तैयार होथु ।

उग्रसेन—देवदेव ! घर जाय तकर व्यवस्था करबाक हेतु हमरा आज्ञा दिय । (यादवसभक संग बहार भय गेलाह ।)

बलदेव—हमहु एखन विश्रामक हेतु जाइत छी ।

श्रीकृष्ण—जे नीक लगय अहाँकेँ । (उठि हुनक अनुनय कय, पुनः बैसि) द्विजराज ! केहन छथि ओ कुमारी जनिक उद्देश्य कय सकलराजाक समूह कुण्डिनपुरक हेतु विदा भेल अछि, से अहाँकेँ बुझल अछि ?

---

१६ - कुण्डिनेश्वरस्य - क । १७ - कुण्डिनमायाताः - क । १८ - कुण्डिन - क । १९ - तदभिज्ञायते - ख ।

द्विजः—देवदेव ! कथं न जानामि, किन्तु दृष्टैव मया । श्रोतव्यं तत्सौन्दर्यं देवदेवेन । (इति गीतेनावेदयति :—)

[गीतसं०--२५]

राजकुमारि देखल हमे[20], विधिवस सखि-सङ्गे ।
निज करेँ कुन्दि मनोभव, सिरिजल तसु अङ्गे ।।
तड़ित उपर शशि, ता पर, जलधर अभिरामे ।
से जनि मेदनि संचर, तन्हो पाव उपामे ।।
अरुन कमल मद मातल, भम मधुकर भोरा ।
मनसिजे व्याध उड़ाओल, की[21] खञ्जन-जोरा ।।
कीदहुँ मुख-शशि-पीउष, पिब युगल चकोरा ।
तसु लोचन देखि मानस, संशय पड़ु[22] मोरा ।।
पङ्कज-कोरक निन्दक, तसु उरसिज—कांती ।
तेँ जनि जल बसि अहोनिसि, तप कर भलभाँती ।।
मध्य विनिन्दक केहरि, गिरिकन्दर गेला ।
मृदु उरु-युग देखि करिवर, लज्जित जनि भेला ।।

द्विज—देवदेव ! विवेक नहि जनैत छी, हम तँ हुनका देखबे कयलियनि । हुनक सौन्दर्य भगवान् सुनल जाओ । (गीतक द्वारा आवेदित करैत छथि) :—

गीतसं०—२५

विधिवस = संयोग सँ । निज करे = अपना हाथेँ । कुन्दि = खराजिकेँ, चिक्कन बनाय (छ्.गन, कुनन) । तड़ित = बिजलोका । शशि = चन्द्रमा । मेदनि = पृथ्वी पर । अरुन कमल = लाल कमल पर । भम = घूमैत अछि । मधुकर = भौँरा । भोरा = शुद्ध हृदयक, भोलाभाला । मनसिज व्याध = कामदेवरूपी शिकारी । मुख-शशि-पीउष = मुहरूपी चन्द्रमाक अमृत । युगल = जोड़ा । पङ्कज-कोरक = कमलक कलीक । उरसिज = स्तन । मध्य = देहक बीच (डाँर)क निन्दा करयवला । केहरि = सिंह । मृदु = कोमल । उरुयुग = दूनू

---

२० - हम - क । २१ - नकि - क; कि - ख । २२ - पड़ु - ख ।

थल-पङ्केरुह-गञ्जित, तसु चरण निरेखी ।
अपनहि अवनत भय फुल, तेँ बुझिअ बिसेखी ॥
गमने मराल-वधूगन, तुलना नहि पावे ।
सुमति रमापति मने गुनि, रुकुमिनि रूप गावे ॥

श्रीकृष्णः—द्विजराज ! ततस्ततः कथ्यतां विशेषतस्तस्याः शरीरशोभा ।
द्विजः—अपि च,

[गीत सं० – २६]

दिन दिन छिन होअ पूरन[23]-चन्द ।
पुरल परागहिँ देखि[24] अरविन्द ॥
कमल - युगल, विधु नहि एकठाम ।
की लय देब तसु वदन उपाम ॥
जओ विधि कोमल करथि प्रवाल ।
नव पल्लव दुति रह[25] चिरकाल ॥
ताहि सुधा - रस धरथि अमूल ।
तखने होअ तसु अधरक तूल ॥
दालिम बीज दसने जिति लेल ।
तेँ फलमध्य तिरोहित भेल ॥

जाँघ । करिवर = हाथी । थल-पङ्केरुह-गञ्जित = थलकमलकेँ तिरस्कृत करनिहारि । अवनत = झुकिकेँ । गमने = गति (चलबा) सँ । मराल-वधूगन = हंसी ॥

श्रीकृष्ण—द्विजराज ! तकर बाद कहू विशेष कय हुनक शरीरक सौन्दर्य ।

द्विज—आओरो ... [गीतसं०—२६]

छिन = क्षीण । पूरन-चन्द्र = पूर्णचन्द्र (नायिकाक मुँह) । अरविन्द = कमल केँ । कमलयुगल विधु = दू कमलक संग चन्द्रमा एकठाम जमा भेल नहि रहैत छथि । विधि = ब्रह्मा । प्रवाल = मूँगा । दुति = चमक । सुधा = अमृत ।

२३ - पुरन - ख । २४ - परागेँ देखिअ - ख । २५ - बहु - ख ।

उरसिजेँ शीतल सिरिफल - भास ।
तेँ कर सतत अकास - निवास ॥
पीठि उपर बेनी[26] भल छाज ।
तसु प्रतिबिम्ब रोमावलि साज ॥
हरिपद प्रनत रमापति भान ।
सिंह नरेन्द्र सकल रस जान ॥

श्रीकृष्णः—द्विजराज ! विचित्रं तस्याः सौन्दर्यमावेदयति भवान् । अहो विधातु निर्माणकुशलता तवापि च वाग्विदग्धता ! ततस्ततः ?
द्विजः—अपि च,

[गीतसं०—२७]

हे माधव ! अपरुब तसु निरमाने ।
देखइतेँ जत संसय मन अवतर, सुनिअ कहिअ अवधाने ॥ध्रु०॥
कनक-लता बिच युगल सिरीफल, उपर उदित हिमधामे[27] ।
विधुमण्डल दुइ खञ्जन ता पर, मदन धनुष अभिरामे[28] ॥
तथिहुँ उपर मनिआरि[29] भुजङ्गिनि, नील बरन तसु काँती ।
युगल बिम्ब फल मध्य मनोरम, दालिम बीजक पाँती ॥

अमूल = अमूल्य । अधरक तूल = ठोरक तुल्य । दालिम = दाड़िम, अनार । दसन = दाँत । तिरोहित = नुकायल । उरसिज = स्तन । सिरि-फल = बेल ॥

श्रीकृष्ण—द्विजराज ! अद्भुत हुनक सौन्दर्य वर्णित करैत छी अहाँ । अहो विधाताक बनयबाक चतुराइ, ओ अहूँक वचन कुशलता ! तकर बाद ?

द्विज—आओरो — [गीतसं०—२७]

निरमाने = बनाबट, गढ़नि । अवतर = अबैत अछि । अवधाने = सावधान । कनकलता = सोनाक लतीक । युगल सिरीफल = एक जोड़ा बेल । हिमधाम = चन्द्रमा । विधु = चन्द्र । मदन = कामदेव । मनिआरि भुजङ्गि-

२६ - पीठिक ऊपर बेनी छाज - क । २७ - धाम - ख ।
२८ - राम - ख । २९ - मणिआर - ख ।

कनक मृणाल विसाल नाल बिनु, लोहित युग अरविन्दा ।
तथिहुँ बार दसविध भय ऊगल, बिमल द्वितीयक चन्दा ॥
भय विपरीति कदलि-युग थिर रहु, बिनु दले परम बिसाले ।
थल-अम्भोज मलानि रहित अति, चित्र देखल चिरकाले ॥
के वरनत तसु रूप असम्भव, सुमति रमापति भाने ।
सिंह नरेन्द्र महीपति समय, बुझ सब गुनक निधाने ॥

श्रीकृष्णः—द्विजराज ! सम्यगभिहितं भवता । युक्तैव नृपकुमाराणां तदव-
लोकनस्पृहा ।

द्विजः—किञ्च,

निर्मातुमारब्धवति मनोभू र्लावण्यमाकृष्य जगत्त्रयस्य[३०] ।
सारं[३१] समुद्धृत्य ततः प्रयत्नात तां सर्वसौन्दर्यमयीं चकार ॥१७॥

नि = मणिवाली साँपिन । बिम्ब = तिलकोड़ । लोहित = लाल । युग = दुइ । अरविन्द = कमल । दसविध = दस तरहक । भय विपरीत = उनटा भए । कदलि युग = दुइ केराक थम्ह । दले = पातसँ । थल अम्भोज = स्थलकमल । (सोनाक लता भेलि नायिका, ताहि मे श्रीफलक जोड़ा स्तन, ऊपर ऊगल चन्द्रमा मुँह, दुइ खञ्जन आँखि, धनुष काजर, साँपिन दुनू भौंह, मणि सिन्दूरक ठोप, तिलकोड़ ठोर दाड़िमक बीज दाँत, मृणाल बाँहि, दुनू कमल हाथ, दस चन्दा दसो नह ओ केराक थम्ह जाँघ भेल ।)

श्रीकृष्ण—द्विजराज ! यथार्थ कहल अहाँ । उचिते छनि राजकुमार लोक, निकेँ हुनक देखबाक इच्छा ।

द्विज—आओरो—

सुन्दरीक बनयबाक विचार कय कामदेव तीनू लोकक सुन्द-
रता समेटि, सारभाग बहार कय यत्नपूर्वक ओहि सुन्दरीक रचना
कयलनि ॥१८॥

---

३० – जगत्त्रयस्य – ख । ३१ – भारं समुद्धृत्य – ख ।

श्रीकृष्णः—अतः परं स्वयमवश्यं यास्यामः कुण्डिनम् । किन्तु रुक्मी नृपसभा-
यामनादरं करिष्यति । अतस्तद् गृहगमनं न रोचते । तत्र च
कोऽभ्युपायः ?

द्विजः—प्रथमतो देवदेवेन कुण्डिनपुर-सविधं गत्वा मनाक् स्थेयं, यावज्जालमा-
र्गेण रुक्मिणी त्वामवलोकयति । ततः क्रथ-कैशिकाभ्यां सर्वं भवदर्थे
सम्पादितमस्ति । तत्राऽवस्थातव्यम् ।

श्रीकृष्णः—(दौवारिकं प्रति) एतस्मै द्विजाय विश्रामार्थं शोभनं मन्दिरं
देयं[३२], दातव्यं च [३३]सत्कार्य-सर्वमुपचारम्, यथाऽसौ मार्गखेदं
विस्मरति तथा परिचरणीयश्च ।

दौवारिकः—सव्वं कज्जं मए कदव्वं । [सर्वं कार्यं मया कर्त्तव्यम् ।]

(द्विजः प्रणम्य निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये—भो ! भो !! निज-दोर्दण्ड-विक्रम-सन्तर्जिताऽशेषशत्रवो यादवाः !
पुरन्दरेणाऽप्यनुल्लङ्घितशासनो महाराज-श्रीमदुग्रसेनो वः समादिशति—

श्रीकृष्ण—हँ आब स्वयं अवश्य जायब कुण्डिनपुर । मुदा, रुक्मी राजसभा
मे अनादर करत । अतः ओकर ओहिठाम जायब नहि नीक लगैत
अछि । ताहि मे कोन उपाय ?

द्विज—पहिने देवदेव स्वयं कुण्डिनपुरक समीप जाय कनेक रुकल जाय, यावत्
खिड़की सँ रुक्मिणी अपनेकेँ देखि लेथि । तकर बाद क्रथ ओ कैशिक
नामक राजा सभ किछु अपनेक लेल ओरिआओने छथि । ओतय रहल
जाय ।

श्रीकृष्ण—(दौवारिकक प्रति) एहि ब्राह्मणकेँ विश्रामक हेतु सुन्दर भवन दएह,
ओ स्वागतक सभ सामग्री दहुन्ह, जाहि सँ ई बाटक थाकनि केँ
बिसरि जाथि तथा हिनक टहल करिहह ।

दौवारिक—सभ काज हम करब ।

(ब्राह्मण प्रणाम कय बाहर गेलाह ।)

(नेपथ्य मे—हे हे ! अपन बाँहिरूपी डंटाक पराक्रमसँ सकल शत्रुकेँ भय
भीत कयनिहार यादवलोकनि ! इन्द्रहुक द्वारा जनिक आदेशक उल्लंघन नहि
भय सकैछ से महाराज श्रीमान् उग्रसेन अहाँलोकनिकेँ आदेश दैत छथि।—

---

३२ – ० – ख । ३३ – चकार – 'क' 'ख' ।

तुहिन - रोचिरभूद् विगतद्युति-
नंभसि नो विलसन्ति च तारकाः ।
अरुणिमेव सुरेश - दिगप्यभूत्
सपदि नूनमियं रजनी गता ॥१९॥

तेन च,

मोच्यन्तां मन्दुराभ्यो जवजित-पवना मञ्जुवर्णास्तुरङ्गाः
योज्यन्तां स्यन्दनेषु द्रुतमथ विगलद् दानमत्ताः करीन्द्राः ।
शालीभ्यो मोचनीयास्तदनु च विविधैर्भूषणैर्भूषणीयाः
प्रस्थातव्यं भवद्भिर्मधुरिपु-सहितैर्मन्दिरं भीष्मकस्य ॥२०॥)

(पुनर्नेपथ्ये दुन्दुभिध्वनिः)

श्रीकृष्णः - (सभागृहमागत्य) दारुक ! तुरङ्गमैः संयोज्य तूर्णं मदीयं रथमानय ।

दारुकः—(प्रणम्य रथं सज्जीकृत्याऽऽनीय) देवदेव ! एष मया सज्जीकृतो रथः । आरोहत्वायुष्मान् ।

शीतल प्रभा वला (चन्द्रमा) कान्तिहीन भय गेलाह, आकाश मे तरेगन सेहो नहि अछि. पूब दिशा ललोन लगैत अछि ओ ई राति शीघ्र समाप्त भय गेल ॥१९॥

आ ताहि सँ—

वेगे हवाकें जितनिहार सुन्दर रंगक घोड़ासभ कें घोड़सार (मन्दुरा) सँ खोलि देल जाय ओ रथसभ मे झटदय जोति देल जाय, चबैत मदसँ मत्त बड़का हाथीसभकें हथिसार सँ खोलि देल जाय ओ अनेक अलंकार सँ सजाओल जाय आ तखन अहाँलोकनि कृष्णक संग राजा भीष्मकक भवनक हेतु प्रस्थान करैत जाइ ॥२०॥)

(फेर नेपथ्य मे रणवाद्य बजैत अछि)

श्रीकृष्ण – (सभाभवन आबि) दारुक (कृष्णक सारथी) ! घोड़ा सभ सँ युक्त कय झट दय हमर रथ आनू ।

दारुक (प्रणाम कय रथ सजायकें आनि) महान् देवता ! इयैह हम रथ तैयार कयल अछि । चिरजीवी अपने एहि पर चढ़ल जाओ ।

(श्रीकृष्णः बलदेवमुग्रसेनं च नगररक्षार्थं प्रतिनिवर्त्य स्वयं रथारोहणं नाटयति । ततः सर्वे प्रचलिताः । तत्र गीतम्—)

[गीतसं०--२८]

कुण्डिन[33] नगर चलल गोविन्द ।
सुनि[34] स्वयंवर अतिसानन्द ॥
सहस[35] सहस चलु रथ, मातङ्ग ।
तुरग[36] - निवह बहुविध तसु रङ्ग ॥
जूथें जूथें[37] कत चलल पदाति ।
देखि चकित होअ सकल अराति ॥
सेनापति सबे यादव वीर ।
छत्र - धरम रन - करम सुधीर ॥
दुन्दुभि भेरी शंख मृदङ्ग ।
अविरल बाजन बाजय सङ्ग ॥
भीषमदेव नगर सनिधान ।
हरि उपगत भेल दिन अवसान ॥
हरिपद प्रनत रमापति भान ।
प्रभु नृप सिंह नरेन्द्र सुजान ॥

(श्रीकृष्ण, बलदेव तथा उग्रसेन कें नगरक रक्षाक हेतु घुराय स्वयं रथ पर चढ़बाक अभिनय करैत छथि । तखन सभ चललाह । ताहि मे गीत ।)

[गीतसं०—२८]

सहस = सहस्र, हजारक हजार । मातङ्ग = हाथी । तुरग-निवह = घोड़ाक समूह । जूथे = झुण्ड बान्हि । पदाति = पएदल सेना । अराति = शत्रु । दुन्दुभि भेरी = ढोल ओ नगाड़ा । अविरल = लगातार । सनिधान = निकट । हरि = कृष्ण । उपगत = उपस्थित । दिन अवसान = दिनान्त मे ।

---

३३ - कुण्डिल - ख । ३४ - सुनिअ - क । ३५ - सहसें सहसें - ख । ३६ - तुरङ्ग - ख । ३७ - जूथ जूथ - क ।

श्रीकृष्णः - एषैव नृपभीष्मकस्य राजधानी द्रष्टव्या भवद्भिर्मयापि । तत् प्रासादसन्निहित-रथ्यायां मनाक् स्थित्वा वैनतेयमनुचिन्तयामि ।
(इति सैन्याद् बहिर्भूय रथ्यामध्ये स्थितः । शङ्खञ्च नादयति ।)

(ततः प्रविशति सौधस्थिता रुक्मिणी, तत्सख्यौ सुदक्षिणा, सुशोभना च ।)

सुदक्षिणा - सहि सुसोहणे ! अच्चरिअं तडाअ[38]-मग्गे संखसद्दो सुणीअदि ।
[सखि । सुशोभने ! आश्चर्यं !! तडागमार्गे शंखशब्दः श्रूयते ।]

सुशोभना - सहि सुदक्खिणे ! भअवदो सिरिकण्हस्स पञ्चजण्णं थिअ[39]वज्जिअ । अण्णस्स ण[40]कउ एरिसो सद्दो । तदो वलहीए चिट्ठिअ मए[41] सह अवलोएहि । [सखि सुदक्षिणे ! भगवतः श्रीकृष्णस्य पाञ्चजन्यमिव नाद्यते । अन्यस्य न कस्यापि ईदृशः शब्दः । ततो वलभ्यां स्थित्वा मया सह अवलोकय ।]

सुदक्षिणा - (अवलोक्य सानन्दं) सहि एसो क्खु अहिणव-जलहर व्व सामलङ्गो विविह-मणि-जड़िअ-कणअ-किरीड-मण्डिअ-मत्थओ णिअ-

---

श्रीकृष्ण - इयेह राजा भीष्मकक राजधानी थिक जे अहाँलोकनिकेँ ओ हमरो देखक थिक । त कोठाक सटले गली मे कनेक रुकि गरुड़क प्रतीक्षा करैछ छी । (सेना सँ बहार भय गलीक बीच मे ठाढ़ भय शंख बजबैत छथि ।)

(तखन प्रवेश करैत छथि कोठा पर ठाढ़ि रुक्मिणी ओ हुनक सखी सुदक्षिणा ओ सुशोभना ।)

सुदक्षिणा - सखि सुशोभने ! आश्चर्य !! पोखरिक बाट पर शंखक शब्द सुनि पड़ैछ ।

सुशोभना - सखि सुदक्षिणे ! भगवान श्रीकृष्णक पाञ्चजन्य शंख जेना बजैत अछि । दोसर कोनो शंखक एहन शब्द नहि होइत छैक । तेँ छत पर ठाढ़ भय हमरा संग देखह ।

सुदक्षिणा—(देखि आनन्दपूर्वक) सखि ! ई तँ नवीन मेघ सनक श्यामल देहवला, अनेक मणि जड़ाओल सोनाक मुकुट माथ पर रखने, अपन

---

३८ - तराअ - क ख । ३९ - ० ख । ४० - अण्णस्सणं कधु क, अण्णं स्सणं कधु ख ।
४१ - सहीए - क ।

कडक्ख-[42]विक्खेव-[43]सम्मोहिदासेस-परिअणो[44]रहोवरि तिहुअणेक्क-मणहरो अपुव्वो पुरिसो दीसदि । एसो ज्जेव सिरीकण्हो भोदित्ति । [सखि ! एष खलु अभिनव-जलधर इव श्यामलाङ्गो विविध-मणि-जटित-कनक-किरीट-मस्तको निजकटाक्ष-विक्षेप - सम्मोहिताऽशेषपरिजनो रथोपरि त्रिभुवनैक-मनोहरः अपूर्वः पुरुषो दृश्यते । एष एव श्रीकृष्णो भवतीति ।]

रुक्मिणी—सहि ! किं दाणिं अलीअ-वअणेहिं मं समस्सासेसि । कुदो मे तारिसं भाअधेअं ? [सखि ! किमिदानीम् अलीकवचनै मां समाश्वासयसि ? कुतो मे तादृशं भागधेयम् ?]

(ततः प्रविशति वैनतेयः)

वैनतेयः—(प्रणम्य) भगवन् देवदेव ! किमर्थमनुचिन्तितोऽस्मि ?

श्रीकृष्णः—सम्प्रति विदर्भपुरं गत्वा क्रथ-कैशिकाभ्यां मदागमनं विज्ञाप्य भवता सौम्यरूपेण तत्र स्थेयम् । अहमपि सपरिवारस्तत्पुरमागमिष्यामि । वाच्यं मया तत्रैव भवते निवेद्यम् ।

कटाक्ष पसारि सकल परिवारकेँ मोहित कयने, रथ पर तीनूलोक मे सबसँ बेसी सुन्दर अपूर्व पुरुष देखाइत छथि । इयेह श्रीकृष्ण भय सकैत छथि ।

रुक्मिणी—सखि ! की एखन व्यर्थक बात सभ सँ हमरा परतारैत छह ? कतय सँ हमर ओहन भाग्य होयत ?

(तखन गरुड़ प्रवेश करैत छथि ।)

वैनतेय—(प्रणाम कय) भगवन् परम देवता ! किऐक बजाओल अछि (स्मरण कयल अछि) ?

श्रीकृष्ण—एखन विदर्भ-नगर जाय क्रथ ओ कैशिक महाराज केँ हमर आगमनक सूचना दय अहाँ शान्त भाय ओतय रही । हमहूँ सपरिवार ओहि नगर आएब । ओतहि अहाँकेँ जे कहबाक अछि से कहब ।

(गरुड़ प्रणाम कय विदा भाय गेलाह ।)

---

४२ - कड़कख - ख । ४३ - विकखेव - ख । ४४ - पडि अणो - क ख ।

(गरुड़ः प्रणम्य प्रचलितः)

सख्यौ—भट्टिदारिए ! दिट्ठिआ बड्ढसि । एसो सच्चं सिरीकण्हो भोदि । गरुड़दंसणेण अम्हाणं संसओ पणट्ठो । ता उट्ठेहि, उट्ठेहि, अवलोएहि कण्हं । [भर्तृदारिके ! दिष्ट्या वर्द्धसे । एष सत्यं श्रीकृष्णो भवति गरुड़दर्शनेन अस्माकं संशयः प्रणष्टः । तदुत्तिष्ठोत्तिष्ठ, अवलोकय श्रीकृष्णम् ।] (इति करयो र्गृहीत्वा उत्थापयतः[४५] ।)

रुक्मिणी—(अवलोक्य मनसा प्रणम्य च सानन्दं सखीभ्यां सह गायति:—)

[गीतसं० – २६]

पुरुब सुकृते हमे आज । हे सखि ! नयन देखल यदुराज ॥
नव घन सामर देह । हे सखि ! हेरितहि उपजु सिनेह ॥
पीत बसन वनमाल । हे सखि ! भूषन सकल बिसाल ॥
इन्दु-वदन अभिराम । हे सखि ! जनि महि अभिनव काम ॥
बिहि बिनिवेदिअ तोहि । हे सखि ! मिलल देव पुन[४६] मोहि ॥
सुमति रमापति भान । हे सखि ! मैथिल नृप रस जान ॥

दुनू सखी—राजकुमारी ! भागमन्ति छी । इयेह सत्ते श्रीकृष्ण थिकाह । गरुड़कें देखि हमरालोकनिक सन्देह दूर भेल । तें उठू, उठू, देखू श्रीकृष्णकें । (दुनू हाथ धय उठबैत छथिन्ह ।)

रुक्मिणी—(देखि मनसँ प्रणाम कय आनन्दपूर्वक सखीक संग गबैत छथि:—)

गीतसं०—२६

पुरुब = पहिलुका । सुकृते = पुण्य सँ । यदुराज = श्रीकृष्णकें । नवघन-सामर = नवीन मेघक समान श्यामल । पीत बसन = पीयर वस्त्र । इन्दु-बदन = चन्द्रमारूपी मुँह । अभिराम = सुन्दर । जनि = जेना । महि = पृथ्वी पर । काम = कामदेव । बिहि बिनिवेदिअ = अपन भाग्य बुझैत छी ॥

४५—उत्थापिता – ख । ४६—मिलन देवपुरे—ख ।

सुदक्षिणा—सहि रुक्किणि सिरिकण्हं पेक्खिअ कीरिसं भोदिए हिअअं ता पुणो बि कहेहि । [सखि रुक्मिणि ! श्रीकृष्णं प्रेक्ष्य कीदृशं भवत्या हृदयं, तत् पुनरपि कथय ।]

रुक्मिणी - सुणदु पिअसही । [शृणोतु प्रियसखी ।]-

[गीतसं०—३०]

सुनि जनिक[४७] गुणगान ना । मन न सोहाएब आन[४८] ना ॥
कमल-नयन यदुराज ना । बिधिबस[४९] देखल आज ना ॥
बदन-कलानिधि देखि ना । मन मोर हरल बिसेषि ना ॥
कि कहब मोहन-रूप ना । कोटि मदन अनुरूप ना ॥
तहिन बिचारिअ काज ना । जे होअ हरिक समाज ना ॥
सुमति रमापति भान[५०] ना । मैथिल नृप रस जान ना ॥

सुदक्षिणा—सहि ! जइ एरिसी देए अस्सि भत्ती बट्टदि तदो झत्ति ज्जेव कण्हो पाणिग्गहं करिस्सदि । जओ एसो भत्तवच्छलो देओ । [सखि ! यदि एतादृशी देवेऽस्मिन् भक्ति र्वर्त्तते तदा झटित्येव कृष्णः पाणिग्रहं करिष्यति । यत एष भक्तवत्सलो देवः ।]

सुदक्षिणा—सखि रुक्मिणि ! श्रीकृष्णकें देखि केहन अहाँक हृदय भेल अछि से फेरो कहू ।

रुक्मिणी - सुनहु प्रियसखी—

गीतसं० – ३०

बिधिबश = भाग्यसँ संयोगसँ । बदन-कलानिधि = मुखचन्द्र । कोटि मदन = करोड़ो कामदेवक सन । हरिक समाज = श्रीकृष्णक सम्पर्क ॥

सुदक्षिणा—सखि ! यदि एहन भक्ति अहाँक एहि देव मे अछि तँ जल्दीये कृष्ण बिवाह करताह । किएक तँ ई भक्तवत्सल देव छथि ।

४७—जनिक - ख । ४८ - आन - ख । ४९ - बसें - ख । ५० - भाव - ख ।

सुशोभना—सहि यदुवीराणां बलेहिं अन्तरिदो देवदेओ, तदो उअविसम्ह ।
[सखि ! यदुवीराणां बलैरन्तरितो देवदेव:, तत उपविशाम: ।]
(इति सर्वा उपविशन्ति । इति निष्क्रान्ता: सर्वे)

॥इति रुक्मिणीपरिणये कुण्डिनपुर-गमनं नाम तृतीयोऽङ्क: ॥

सुशोभना—सखि ! वीर यादवक सेनाक द्वारा आड़ भय गेलाह देवदेव श्रीकृष्ण। तें बैसैत जाइ।
(सभ बैसैत छथि । तखन सभ बहार भेलि ।)

रुक्मिणीपरिणय मे कुण्डिनपुरगमन नामक
तेसर अंक समाप्त ॥

अथ चतुर्थोऽङ्क:

(तत: प्रविशत: क्रथ-कैशिकौ)
[गीतसं०---३१]

हरिपद भगत विदर्भ नरेस ।
क्रथ कैशिक भूपति परवेस ॥
कइए प्रनाम भगत अनुरूप ।
अञ्जलि बाँधि निवेदथि भूप ॥
हमर भवन हरि करिअ सनाथ ।
चलिअ सकल यादवगन साथ ॥

चारिम अंक
(क्रथ ओ कैशिक प्रवेश करैत छथि ।)

गीतसं० — ३१

हरिपद भगत =कृष्णक चरणक भक्त । विदर्भ नरेश = विदर्भदेशक राजा

भगत बछल सत् भगति विचारि ।
अतिकरुनामय चलल मुरारि ॥
सुमति रमापति भन परमान ।
भाव अधीन सदत भगवान ॥

श्रीकृष्ण: - (तद्गृहं गत्वा परिक्रम्यावलोक्य च) महाराज कैशिक ! सर्वं मदर्थं भवद्भ्यां सम्यक् सम्पादितम् । किन्तु यादवेभ्योऽपि निवास-स्थानं[1] देयम् ।

कैशिक: - देवदेव । [2]स्थानमिति कथमुच्यते ? किन्तु प्रागेव मया तेषामर्थं कृतानि मन्दिराण्येव सन्ति । (ततस्तदधिकारिणं पुरुषमाहूय) [3]व्यपदिश्यतां यादवेभ्य: प्रत्येकं निवासभवनं सम्पादनीयश्च तत्र तत्र सर्वोपचार: ।

पुरुष: - जं देओ आणवेदि । [यद् देव आज्ञापयति ।] (इति तथा कृतवान्।)

कैशिक: - देवदेव ! इदं सिंहासनमासाद्योपविशतु देवदेव: । इदं सितच्छत्रमिमे चामरे च गृहाण ।

क्रथ-कैशिक । भगत बछल = भक्तवत्सल ।।

श्रीकृष्ण - (हुनक घर जाय घूमि ओ देखि) महाराज कैशिक ! सबकिछु हमरा लेल अहाँ दुनू गोटा (क्रथ ओ कैशिक) नीकजकाँ तैयार कयने छी । किन्तु यादवोलोकनिकें डेरा दियन्हु ।

कैशिक - देवदेव ! स्थान दियन्हु से की कहैत छी ? किन्तु पहिनहि हम हुनका-लोकनिक लेल घरे बनबाय लेने छी । (तखन ओहि घरक अधिकारी कें बजाय) यादवसभमे प्रत्येककें एक एक घर निर्धारित कय दिय-न्हु ओ सभठाम उचित सकलसामग्रीक व्यवस्था कय दियन्हु ।

पुरुष—जे सरकारक आज्ञा । (तहिना करैछ ।)

कैशिक– देवदेव ! एहि सिंहासनकें पाबि बैसल जाओ भगवान् । ई उज्जर छत्र ओ ई दुनू चामर लेल जाओ ।

---

1 – स्थल – क । 2 – स्थल - क । 3 – व्यादिश्यतां – क ।

(श्रीकृष्णः समुपविशति । कथ-कैशिकौ श्रीकृष्णस्य चरणौ प्रक्षाल्य तज्जलं शिरसि धत्तः, चामरे चादाय वीजयतः । उपचारैः सम्पूज्य च गीतेन वाक्यमावेदयतः ।)

विहागरा [गीतसं०--३२]

पाप-निवह गेल, जनम सफल भेल, पदपङ्कज तुअ देखि ।
गृह आगमने सकल कुल उधरल, सुकृत हलव कोने लेखि ।।
माधव ! सुनिअ विनति ब्रजराज ।
पुलकें पुरल तनु, हरष पुछिअ जनु, जहिन होअ मोहि आज ।।ध्रु०।।
उतपति, पालन, प्रलयक कारन, तीन भुवन तुअ भार ।
असुर अंस नृपवंस विध्वंसन हेतु मनुज अवतार ।।
रङ्गभूमि सिंहासन सङ्कट, जनु होअ भूप—समाज ।
तें हमे हरषित भय विनिवेदिअ, अङ्गसहित निज राज ।।
चामर छत्र कनक सिंहासन, रतन कोष अवशेष ।
सकल निवेदल दुहु सहोदरे, प्रात करव अभिषेक ।।
कैशिक नृपति मुरारि भगति गति, सुमति रमापति भान ।
सिंह नरेन्द्र विविध गुण विन्दक, मैथिल नृप रस जान ।।

(श्रीकृष्ण बैसैत छथि । कथ ओ कैशिक श्रीकृष्णक चरण पखारि ओकर जल माथ पर लैत छथि । चामर लय हौंकैत छथि । पूजाक सामग्री सभ सँ पूजा कय गीतक द्वारा कथ्य आशय निवेदित करैत छथि:—

राग विहागरा - गीतसं० - ३२

निवह = समूह । उधरल = उद्धार भेल, सद् गति पओलक । सुकृत = पुण्य । हलव = प्रकट करब । पुलकें = आनन्दें । तनु = देह । असुर अंश = दैत्यक अवतार । नृपवंश = राजाक वंशक । विध्वंसन = नाशक । रङ्ग = युद्ध । अङ्गसहित = अपन देह सहित । अभिषेक = राजतिलक । मुरारिभगति गति = कृष्ण भक्तिक स्वरूप । गुण विन्दक = गुणग्राही ।।

---

४ — × (एहि चरणक अभाव) — क -

श्रीकृष्णः - युवयो र्भक्तिमवलोक्य मयापि स्वीकृतमिदम् ।
(प्रविश्य चित्राङ्गद-नामा देवदूतो गीतेनावेदयति—)

चित्राङ्गदः— गीतसं० — ३३

हरि अभिषेक करिय नृप कैशिक, कइए परम सम्मान ।
ताहि सिंहासन आनि बैसाओल, जाहि चढ़ल नहि आन ।।
कह सुरपति-दूत । ई सबे तोहि कहथि पुरहूत ।।ध्रु०।।
से बुझि देवराजे सिंहासन, सकल रतनमय आज ।
कनक-दण्ड सित छत्र पठाओल विबुध विभूषण साज ।।
राज इन्द्र अभिषेक महीतल, न थिक देव अधिकार ।
तें कारने अनुमानि पुरन्दर कथ-कैशिक देल भार ।।
अन्यच्च,
भूप-कुमारि स्वयंवर उपगत, जत जत अछि महिपाल ।
सबहि हकार करिय नृप कैशिक, हरि अभिषेक विसाल ।।
से सुनि जे भूपति नहि आओत, तुअ मन्दिर नरपाल !
हरिक वध्य भय अवनी-मण्डल, से ने रहत चिरकाल ।।

श्रीकृष्ण - अहाँ दुनू गोटाक भक्ति देखि हमहूँ एकरा स्वीकृत कयल ।
(प्रवेश कय चित्राङ्गद नामक देवताक दूत गीतक द्वारा कहैत छथि ।)

गीतसं० — ३३

चित्राङ्गद - हरि अभिषेक = श्रीकृष्णक राजतिलक । कइए = कयकें । सुरपति-दूत = इन्द्रक दूत । पुरहूत = इन्द्र । कनक दण्ड = सोनाक डंटा सँ युक्त उजरा छाता । राज इन्द्र अभिषेक = राजासबहिक मध्य उत्कृष्ट राजा होयबाक राजतिलक । महीतल = पृथ्वी पर । पुरन्दर = इन्द्र ।
आओरो —
भूपकुमारि = राजकुमारीक । उपगत = उपस्थित । हरिक वध्य = कृष्णक हाथें वध करबाक योग्य । अवनी मण्डल = पृथ्वी पर ।

सुरपति • दूत उकुति नरपति सबो सुमति रमापति भान ।
सिंह नरेन्द्र सकल याचक गति, मिथिलापति रस जान ॥

किञ्च सकल-तीर्थ-वारिपूरितं दिव्यगन्ध-मयमभिषेकनिमित्तं कनक-कलशाष्टकं चाऽऽखण्डलेन प्रेषितमिदम् ।

राजानौ—(सहर्षं) शिरसि धृतावावाभ्यां देवराजाऽनुज्ञा । कः कोऽत्र भोः !

प्रतीहारः— (प्रविश्य) एसोह्मि, आणवेदु महाराओ । [एषोऽस्मि, आज्ञापयतु महाराजः ।]

कौशिकः—इदं पत्रमादाय झटिति कुण्डिनपुरं प्रयाहि । वक्तव्यं च नृपेषु— "आवाभ्यां देवदेवस्य भगवतो वासुदेवस्य राजेन्द्राभिषेको विधेयः। तेन भवद्भिरत्राऽवश्यमागन्तव्यम् । यस्तु नागमिष्यति सोऽस्य वध्यो भविष्यतीति देवराजेनाऽऽदिष्टमिति " ।

प्रतीहारः— जं आणवेदि देओ । [यदाज्ञापयति देवः ।]

(इति निष्क्रम्य रङ्गभूमिं गतः)

सुरपतिदूत = इन्द्रक दूतक । उकुति = कथन ॥

आओर ई जे, सभ तीर्थक जल सँ भरल दिव्य सुगन्ध सँ युक्त अभिषेकक लेल सोनाक आठ टा ई घैल इन्द्र पठओलनि अछि ।

दुनू राजा - (आनन्द सँ) हम दुनू गोटा देवराजक आज्ञा कें माथ पर चढ़ा ओल । क्यो अछि ?

प्रतीहार—(प्रवेश कय) इयेह हम छी, महाराज आज्ञा देल ।

कौशिक - ई चीठी लय शीघ्र कुण्डिनपुर जाह ओ राजासभकें कहबहुन्ह जे " 'हमरा दुनू गोटा देवदेव भगवान् श्रीकृष्णक राजेन्द्राभिषेक (महान् राजतिलक) करब । ताहि कारण अहाँसभ एतय अवश्य अबैत जाइ । जे नहि आयब से हिनक वध्य (वधक योग्य) होयब— ई इन्द्रक आदेश अछि" ।

प्रतीहार - जे महाराजक आज्ञा हो । (ई कहि बहार भय रङ्गमञ्च पर गेल ।)

भीष्मकः - (रुक्मिणं[5] प्रति) युवराज ! भवता जरासन्धादिभिः सह रङ्गभूमेरशून्यत्वकारणाद् अत्रैव स्थातव्यम् । देवराजस्याऽप्यनुमतमेव तत् । गच्छन्तु चाऽन्ये भूपाला मया सह विदर्भनगरम् ।

रुक्मी - यदभिरोचते ताताय ।

(ततः सर्वे नृपभीष्मकं पुरस्कृत्य कौशिक-भवनं गताः, भीष्मकः श्रीकृष्णमवलोक्य प्रणतिं कर्तुमुद्यतः ।)

श्रीकृष्णः - महाराज ! नृप-लक्षणा वयसाऽपि च त्वमेव नः पूज्योऽसि । (इति विनिवार्य करे गृहीत्वा सिंहासनान्तरे समुपवेशयति[6] ।

(कौशिकः प्रत्येकं तान् पाद्यादिभिरभिनन्दयति ।)

चित्राङ्गदः - महाराज कौशिक ! समागताः सर्वे नृपाः । देवराजो विमानमारुह्य देवैः सह गन्धर्व यक्षाऽप्सरोभिः गीयमानः कृष्णाऽभिषेक-दर्शन-लालसो दिवि स्थितस्त्वामादिशति। तत् त्वर्यतां, त्वर्यताम् ।

भीष्मक - (रुक्मीक प्रति) युवराज ! अहाँ जरासन्ध प्रभृतिक सङ्ग रङ्गभूमिकें सून नहि रखबाक कारण एतहि रहब । देवराजहुक से अनुमोदित अछि । आन राजासभ हमरा सङ्ग विदर्भ नगर चलथु ।

रुक्मी - जे विचार पिताजीक ।

(तखन सभ भीष्मक कें आगू कय कौशिकक भवन गेलाह । भीष्मक श्रीकृष्णकें देखि प्रणाम करबाक हेतु उद्यत भेलाह ।)

श्रीकृष्ण - महाराज ! राजाक लक्षण ओ अवस्थहु सँ अहीं हमरालोकनिक पूज्य छी । (रोकि हाथ धय दोसर सिंहासन पर बैसबैत छथि ।)

(कौशिक प्रत्येक राजाकें पाद्य अर्घ्य आदि सँ सत्कार करैत छथि ।)

चित्राङ्गद - महाराज कौशिक ! सभ राजा आबि गेलाह । विमान पर चढ़ि देवतालोकनिक संग गन्धर्व, यक्ष ओ अप्सरासभ सँ स्तुति कयल जाइत देवराज इन्द्र कृष्णाभिषेकक दर्शनक लालसासँ युक्त भय आकाशमे विद्यमान छथि ओ अहाँकें आदेश दैत छथि । तें शीघ्रता करू, शीघ्रता करू ।

---

५ - रुक्मिणौ - ख । ६ - समुपवेशितः - क ख ।

(अथ-कैशिकौ सानन्दं कनक-कलशैर्व्यस्तीर्थ-सलिलमादाय श्रीकृ-ष्णस्य[७] शिरसि राजेन्द्राभिषेकं चक्रतुः। तदा तत्पुरस्त्रियो गायन्ति विहागरागेण गीतम्:–)

[गीतसं०---२४]

हरष कहव कत आज सजनी ।
अतिप्रमुदितमति कैशिक भूपति, हरिहि देल निजराज ॥ध्रु०॥
कनक-कलश सओ सुरसरि जल लय, विविध सुगन्धिक साथ ।
अतिलोहित सहकारक पल्लवे, सींचथि यदुपति - माथ ॥
कुंकुम रोचन मलयज मृगमदेँ, तिलक कइए[८] हरि - भाल ।
कंचन रजत विभूषन बहुविध, बसन देथि सुविसाल ॥
से देखि भीषमदेव महामति, मनि - मुकुता बहुमूल[९] ।
हरषि देथि हरिपद अवनत भय, अनुपम रुचिर दुकूल ॥
अस जत भूप समागत कुण्डिन, सबहुँ कयल धन-दान ।
अगनित तत बरनय के जानय, सुमति रमापति भान ॥

(अथ ओ कैशिक आनन्दपूर्वक सोनाक घैलसभ सौं जल लय श्रीकृ-ष्णक माथ पर राजेन्द्राभिषेक (महाराज होयबाक अवसर पर जलक सिञ्चन) कयलनि । तखन ओहि नगरक स्त्रीगण विहाग रागक द्वारा गीत गबैत छथि।)

गीतसं०—२४

अतिप्रमुदित – अतिप्रसन्न। हरिहि – कृष्ण केँ। कनककलश – सोनाक घैल सौं। सुरसरि – गङ्गाक। लोहित – लाल। सहकार आम । मलयज – श्रीखण्डचानन। मृगमद – कस्तूरी। कंचन – सोना। रजत – चानी। बसन – वस्त्र। अवनत – झुकि। रुचिर दुकूल – सुन्दर वस्त्र॥

---

७ - श्रीकृष्णाय - ख। ८ - कयल - क। ९ - माल - ख। १० - होओ - ग

अपि च,

[गीतसं०---२५]

हे सखि ! कहब कओने बिसेखि ।
जे होअ[१०] आनन्द सुखक सदन, हरिक[११] वदन देखि ॥ध्रु०॥
लय करेँ तण्डुल दूबि मनोहर, बाभन वेदेँ चुमाव ।
जूथे जूथे बनिता गुन गावय, कत[१२] न लावय भाव ॥
मुरज ताल धुनि, सुललित मने गुनि, गान करय[१३] नट नाच ।
भेष धरय कत, भाव सकल तत, जत जत जे जन जाच ॥
उरवसि रम्भा सहित मेनका, गगन नाच अतिरेक ।
किन्नर, शङ्कर सचिपति सन्निधि, गाब बजाब अनेक ॥
कय अति हरखे[१४], कुसुमक बरखे, सकल देव - समाज ।
गाए रमापति, हरिपद धय मति, बूझथि मैथिल - राज ॥

श्रीकृष्ण – (कैशिकं प्रति)

अनेन तव दानेन भक्त्या च क्रथ-कैशिकौ ।
चतुर्वर्ग - फलप्राप्तिस्तवाऽस्तु नियतं भुवि ॥२१॥

श्राओरो –

गीतसं०—२५

बिसेखि – अधिक कय। सदन – घर (सुखक घर – अतिशय सुख)। तण्डुल दूबि – दूबिक्षत। जूथे – झुण्ड बान्हि। बनिता – नारी। मुरज – तबला। जाच – मङ्गैत अछि। अतिरेक – अतिशय। किन्नर – देवताक गायक। शंकर सचिपति सन्निधि – महादेव ओ इन्द्रक समीप मे॥

श्रीकृष्ण – (कैशिकक प्रति) हे क्रथ ओ कैशिक ! अहाँक एहि दान ओ भक्ति सौं अहाँकेँ एहि पृथ्वी पर नियतरूपेँ धर्मार्थकाममोक्ष ई चारू पुरुषार्थ प्राप्त होअओ ॥२१॥

---

११ - हरिकेर वदन निरेखी - क। १२ - कतेक - क। १३ - कइए - ख। १४—कय अति बरखा हरखि कुसुमबर – क। कय अति हरखा कुसुम बरसु कल - ख।

कौशिकः—(प्रणम्य अञ्जलिं बद्ध्वा) देवदेव !

किमलभ्यं भगवति[15] प्रसन्ने जगदीश्वरे ।
ततो याचेऽचलाभक्तिं त्वयि देव मुहुर्मुहुः ॥२३॥

श्रीकृष्णः—(विहस्य तथास्तु (भीष्मकं प्रति गीतेनादिशति विहागरागेण)—

[गीत सं० - ३६]

भीष्मदेव सुनिअ विनिवेदन, मन जनु करिअ मलान ।
एक सुता वर एके होयत पए[16], जगत सकल जन जान[17] ॥१॥
हे नृप ! करिअ स्वयंवर काज ।
शुभ सम्मति लिअ, ताहि सुता दिअ, जे समुचित महराज ॥ध्रु०॥
जें विधि एहि निमन्त्रण उपगत, तुअ मन्दिर सब भूप ।
तें विधि हमहुँ समागत कुण्डिन यदुबल लय अनुरूप ॥२॥
[18]हमर समागम दोष बुझिअ जनु, दिअ निज कन्या दान ।
हम बाधक नहि होएब स्वयंवर, नृपवर करु अनुमान ॥३॥
जे जन कन्या - विवाह विघ्न कर, निवसय नरकक कूप ।
सुमति उमापति उकुति शास्त्र कह, जानथि मिथिला - भूप ॥४॥

कौशिक—(प्रणाम कय आँजुर बान्हि) देवदेव ! संसारक ईश्वर भगवान् अपनेक प्रसन्न भेला पर कोन वस्तु अलभ्य (नहि प्राप्त होमयवला) अछि, तखन हे देव ! अहाँक प्रति अचल भक्ति हो से बारम्बार मङैत छी ॥२३॥

श्रीकृष्ण—(हँसि) तहिना हो (भीष्मकक प्रति विहागरागवला गीत सँ आदेश दैत छथि)—

गीतसं० - ३६

मलान — उदास । उपगत — उपस्थित । मन्दिर — घर मे । यदुबल — यादवीय सेना । सुमति उमापति उकुति — पारिजातहरण नाटककार सुमति उमापति उपाध्याय क उक्ति अछि, जे शास्त्र कहैत अछि ।

---

१५ - भगवते - ख । १६ - ० - क । १७ - जानत सकल सुजान - क ।
१८ - २० - क (एतय सँ पांतीक अभाव ।)

भीष्मकः—(उत्थाय सानुनयम्) देवदेव ! दुर्विनीतो बालश्च मत्कुमारो रुक्मी भगवन्तमपि प्राकृतमिव जानाति । ततो नृपसिंहासनोपवेशनादौ नाऽऽदरमाचरति । तेन मयापि सभागृहं प्रथमं नोपनीतो देवदेवः । किन्तु आभ्यां मदनुमत्यैव सर्वमाचरितम् । अतःपरं सभागृहमेव [19]नेष्यामि ।

श्रीकृष्णः—महाराज ! किमर्थं मया तत्र गन्तव्यम् ? भवद्विलोकनादेव पूरिता नो मनोरथाः । किन्तु यतो वयं पात्रतां प्राप्ताः, ततः पात्रेभ्यः कन्यापि दीयतां, वाच्यशेषमाकर्ण्य । (पुनर्गीतेन :—)

मेरुशिखर भय, कमलासन लय, सुरगन कएल विचार ।
भीषम नृप तनया भय कमला अवनि लेथु अवतार ॥५॥
ता सञो हरि परिनय महि होयत, बहुत होयत सुरकाज ।
ई बुझि हमर निकट उपगत भय भाषि गेल मुनिराज ॥६॥
से सुनि भीषमदेव महामति, दृढ़ भय धयल धेआन ।
विश्वरूप माधव तनु पेखल, लेखल[20] मने नहि आन ॥७॥

भीष्मक—(उठि विनयपूर्वक) देवदेव ! अशिष्ट ओ बालक हमर पुत्र रुक्मी भगवानो कें साधारणलोक बुझैत अछि। तें राजसिंहासन पर बैसब आदि मे आदर नहि करैछ। ताहि कारणें हमहुँ सभागृह मे देवदेव कें नहि लय गेलहुँ । किन्तु ई दुनू कथ ओ कौशिक हमरे आज्ञा सँ सभ किछु कयलनि अछि । एकर बाद सभागृहे लय जायब ।

श्रीकृष्ण—महाराज ! कियेक हम ओतय जायब ? अहाँक दर्शने सँ हमर मनोरथ पुरि गेल । किन्तु जें हम सुपात्र छी तें सत्पात्र (समुचित योग्य व्यक्ति) कें शेष वक्तव्य सुनि कन्या देल जाय । (फेर गीत सँ)—

मेरुशिखर = सुमेरु पर्वतक चोटी पर एकत्रित भय । कमलासन = ब्रह्मा । सुरगन = देवता । तनया = पुत्री । कमला = लक्ष्मी । अवनि = पृथ्वी पर । परिनय = विवाह । महि = पृथ्वी पर । मुनि-

---

१९ - नयिष्यामि ख । २० - पेखल - क ।

भीषम नृपति उकुति यदुपति सजो, संमति रमापति भान ।
सिह नरेन्द्र सकल अवनीपति तुअ सब गुनक निधान ॥८॥

भीष्मकः—(प्रणम्य) भगवन् ! एवमेतत् । सम्प्रति मया स्वयंवरोपि विनिवार्तितः[२१] ।

श्रीकृष्णः—(गरुडं प्रति जनान्तिकम्) खगेन्द्र ! स्वयंवर-विघटनात् प्रकुपिता जरासन्धादयो माथुरैरवध्यं कालयवनं पुरस्कृत्य मथुरोपरोधं करिष्यन्ति । तेन मद्वचनात् समुद्र-सकाशात् स्थलमुपगृह्य भवता पक्षवातेन जलं प्रक्षिप्य विश्वकर्माणमाहूय, तत्र सकल-यादवगण-सन्निवेशयोग्या द्वारवती नाम्नी नगरी द्रुतं विधेया । अन्यच्च रुक्मिण्या हरणावसरे भवता साहाय्यमाचरणीयम् ।

गरुडः—देवदेव ! सर्वमेतन्मया सम्पादनीयम् (इति निष्क्रान्तः ।)

भीष्मकः—(स्वयंवरार्थमागतान् नृपान् प्रति [२२]सप्रश्रयम्)—
गच्छन्त्वं भूमिपाला नय-विनययुताः स्वैरनीकैः समेताः

राज = नारद । दृढ़ = स्थिर । विश्वरूप = संसारक स्वरूप । तनु = देह । भीषमनृपति उकुति = भीष्मक-राजाक उक्ति । अवनीपति = पृथ्वीपति, राजा ॥

भीष्मक—(प्रणाम कय) भगवन् ! ई एहिना अछि । एखन हम स्वयंवरोकें रोकैत छी ।

श्रीकृष्ण—(गरुड़क प्रति कनफुसकी कय) पक्षिराज ! स्वयंवरक भंग सँ तमसायल जरासन्ध आदि, मथुराक वीर सँ अवध्य कालयवन केँ आगु कय मथुरा मे उपद्रव करत । तेँ हमरावचन सँ समुद्रक समीप सँ अहाँ स्थल (भू भाग) लय पाँखिक हवा सँ जल फेकि, विश्वकर्मा केँ बजाय ओतय सभ यादवक निवास योग्य द्वारवती नामक नगरी झटदय बनबाउ । दोसरो बात जे रुक्मिणीक हरणक समयमे अहाँ सहायता करी ।

गरुड़—देवदेव ! ई सभकिछु हम करब । (बहार भय गेलाह ।)

भीष्मक—(स्वयंवरक हेतु आयल राजासभक प्रति विनयपूर्वक)—
हे नीति ओ विनययुक्त राजालोकनि ! अहाँसभ अपन सेनासहित

---

२१ - विनिवार्यताम् - क । २२ —सप्रणयम्—क ।

मेदनीं गत्सुतायाः [२३]परिवरणमतो राजधानीं स्वकीयाम् ।
क्षन्तव्यश्चापराधो मम गतवयसः शीलवद्भिः भवद्भि-
र्याचेऽहं नम्रमौलिः कृतनयवशगो नो विधेयः प्रकोपः ॥२३॥

(राजानः श्रीकृष्णं प्रणम्य तथाऽऽचरन्ति)

भीष्मकः—देवदेव ! सम्प्रत्यनुजानीहि मां स्वपुरगमनाय । किन्तु मथुरामुपगते वार्तोपलब्धिः कथं स्यात् ?

श्रीकृष्णः—देवर्षिरागत्य सर्वं कथयिष्यति । महाराज कौशिक ! वयमपि सम्प्रति मथुरामेव यास्यामः ।

(उभौ श्रीकृष्णमनुनीय प्रणम्य च प्रतिनिवृत्तौ)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति रुक्मिणीपरिणये श्रीकृष्णस्य राजेन्द्राभिषेक-
स्वयंवरविघटनको नाम चतुर्थोऽङ्कः ॥

जाइ जाउ । एखन हमर पुत्रीक विवाह नहि होयत, अतः अपन राजधानी जाउ ओ वृद्ध-हमर एहि अपराधकेँ सदाचारी अहाँ लोकनि क्षमा करी । हम माथ झुकाय याचना करैत छी जे हमर कुपुत्रक द्वारा कयल अपराध पर क्रोध जनु करी ॥२३॥

(राजासभ श्रीकृष्णकेँ प्रणाम कय ओहिना करैत छथि ।)

भीष्मक—देवदेव ! एखन हमरा अपन नगर जयबाक आज्ञा दिय । किन्तु अहाँक मथुरा पहुँचला पर समाचार कोना प्राप्त होयत ?

श्रीकृष्ण—देवर्षि नारद आबि सभटा कहताह । महाराज कौशिक ! हमरोलोकनि एखन मथुरे जायब ।

(दुनू राजा श्रीकृष्णक प्रार्थना ओ प्रणाम कय घुरि गेलाह ।)

(सभ बहार भय गेल ।)

॥ रुक्मिणीपरिणय मे श्रीकृष्णक राजेन्द्राभिषेक ओ
स्वयंवरविघटन नामक चतुर्थ अङ्क समाप्त ॥

२३—परिणयन—क ।

अथ पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्याकाश-यानेन नारदः । तत्र गीतम् —)

[गीतसं० --- २७]

सुरमुनिराज मनोहर भेस । ब्रह्मा-तनय नारद परवेस ॥
शुभ्र तिलक उपवीत दुकूल । श्रुति-पुस्तक जपमाल अमूल ॥
दण्ड कमण्डल मण्डित हाथ । कपिल जटाचय शोभित माथ ॥
ब्रह्म-तेजें तसु मलिन दिनेस । योग जुगुति जनि दोसर महेस ॥
हरिक पठाओल भीषम-ठाम । उपगत मुनिवर कुण्डिन ग्राम ॥
कहथि रमापति नारद-रूप । रस बुझु रसमय मैथिल भूप ॥

राजा—(प्रविश्य, नारदागमनं प्रकाशाधिक्याद् वितर्क्य द्वाराद् बहिर्गत्वा प्रणम्य, पुरस्कृत्याऽऽनीय, अत्यादरेण अतिथि-सत्कारं विधाय) भगवन् ! वयमद्य कृतार्था धन्याश्च युष्माकमागमन-प्रसादात् ।

पाँचम अङ्क

(तखन आकाशमार्ग सँ नारद प्रवेश करैत छथि । ताहि मे गीत—)

गीत सं० – ३१

सुरमुनिराज = देवताक मुनि मे राजा, नारद । ब्रह्मतनय = ब्रह्माक पुत्र । शुभ्र = स्वच्छ । उपवीत = जनेउ । दुकूल = वस्त्र । श्रुति पुस्तक = वेदक पोथी । अमूल = अमूल्य । कपिल = भूरा । दिनेश = सूर्य । जोग जुगुति = योगाभ्यास सँ । महेस = महादेव भीषम-ठाम = भीष्मक ओहिठाम । उपगत = आयल ॥

राजा—(प्रवेश कय, अधिक प्रकाश भेलासँ नारदक आगमनक तर्क कय द्वार सँ बाहर जाय प्रणाम कय, आगू कयकें आनि अत्यन्त आदर सँ अतिथि-सत्कार कय) भगवन् ! हमरालोकनि आइ अपनेक आगमनक प्रसाद सँ सफल ओ धन्य छी ।

नारदः—(शुभाशिषो दत्त्वा) राजन् ! न खलु विस्तर-शिष्टाचारस्यैष समयः ।

राजा—(उपविश्य सविनयम्) कथयतु तपोनिधिरागमन-प्रयोजनम् ।

नारदः—सम्प्रति द्वारकातो भगवता वासुदेवेनाऽहमत्र प्रेषितः ।

राजा—कुत्र सा द्वारका नगरी ?

नारदः—पश्चिम-समुद्रस्योपकण्ठे गरुडद्वारा समाज्ञप्तो विश्वकर्मा काञ्चनमयीं तां पुरीं चकार ।

राजा—किं तत्र भगवान् सम्प्राप्तः ?

नारदः—राजन् ! विदर्भनगरे श्रीकृष्णस्य राजेन्द्राभिषेकवृत्तान्तं सर्वमेव निशम्य जरासन्धप्रभृतयः शङ्किताः सभयाश्च बभूवुः । ततो रुक्मिणा सह सम्मन्त्र्य माथुरैरवध्यं कालयवनं पुरस्कृत्य मथुरोपरोधं कृतवन्तः ।

राजा—ततस्ततः ?

नारद—(शुभाशीर्वाद दय) राजन् एखन विशेष शिष्टाचारक ई समय नहि थिक ।

राजा—(बैसि विनयपूर्वक) कहल जाओ तपस्यारूप धनवाला अपने अयबाक प्रयोजन ।

नारद—एखन द्वारका सँ भगवान् कृष्णक द्वारा हम एतय पठाओल छी ।

राजा—कतय अछि ओ द्वारका नगरी ?

नारद—पश्चिम-समुद्रक तट पर गरुड़क द्वारा आज्ञा आबि विश्वकर्मा स्वर्णमयी ओहि नगरीक निर्माण कयल ।

राजा—की ओतय भगवान् पहुँचि गेलाह ?

नारद—राजन् ! विदर्भनगरमे श्रीकृष्णक राजेन्द्राभिषेक होयबाक समाचार सभ सुनि जरासन्ध इत्यादि शङ्कित ओ भयभीत भय गेल अछि । तें रुक्मीक संग परामर्श कय मथुरावासी सँ अवध्य (नहि मारल जयबाक योग्य) कालयवन कें आगू कय मथुरा पर आक्रमण कयलक ।

राजा—तखन ?

नारदः—श्रीकृष्णोऽपि प्रागेव यादवान् द्वारवतीं प्रेष्य स्वयं कालयवनं दर्शयित्वा प्रपलाय्य एकाकिनमनुधावन्तं कालयवनं मुचकुन्द-नृपस्य नेत्राग्निना भस्मासाद् विधाय द्वारवतीं गतः। तत्र च मामनुसृत्य श्रीकृष्णेनोक्तं, यथाशीघ्रं त्वया कुण्डिनं गत्वा भीष्मकाय वाच्यं, रुक्मिणा सह विचार्य करोतु शिशुपालार्थमेव विवाहोद्योगम्। तत एवाऽभिमतसिद्धि र्भविष्यतीति।

राजा—सर्वं थैव कुमारमाहूय तथा क्रियते।

नारदः—अहमपि रुक्मिण्या वृत्तं कन्याभवनात् प्रच्छन्न एवोपलभ्य यास्यामि।

(इति निष्क्रान्तः।)

॥ इति विष्कम्भकः ॥

नारद – श्रीकृष्णो पहिनहि यादवसभकें द्वारका पठाय स्वयं कालयवनक सोझाँ होइत पड़ाय एकसरे दौड़ैत कालयवन कें मुचकुन्द-राजाक आँखिक आगि सँ भस्म कराय द्वारका गेलाह। आ ओतय हमरा बजाय श्रीकृष्ण कहलनि जे यथाशीघ्र अहाँ कुण्डिनपुर जाय राजा भीष्मक कें कहिअनु जे रुक्मीक संग विचारि करथु शिशुपालक हेतु विवाहक उद्योग। ताही सँ अभीष्ट सिद्धि होयत।

राजा—सबतरहें कुमारकें बजाय तहिना करैत छी।

नारद – हमहूँ रुक्मिणीक हालचाल कन्याभवन सँ नुकायकें प्राप्तकय जायब।

(प्रस्थान कय देलनि।)

विष्कम्भक समाप्त।

[वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
विष्कम्भोऽङ्कद्वयस्यान्ते पातोऽङ्कस्याऽविभागतः॥

बीतल वा आगामी कथांशकें सूचित करयवला दृश्य कें विष्कम्भक कहल जाइछ जे दुइ अङ्कक बीच मे अङ्कहिं मिलल अपृथक् रहैछ। अर्थात् ई नाटकक आदि वा अन्त मे नहि भय सकैछ। ई कथावस्तुकें परिपूर्ण ओ सम्बद्ध करैछ। (दशरूपक)।]

राजा—नयसागर! आहूयतां कुमारः।

(कञ्चुकी तथा करोति। ततः प्रविशति रुक्मी)

रुक्मी – महाराज! कथमाहूतोऽस्मि?

राजा—कुमार! श्रुतं मया, श्रीकृष्णः प्रपलाय्य द्वारवतीं गतः। तेन चेदिनृपमानीय क्रियतां भगिन्या विवाहोद्योगः।

रुक्मी—(सहर्षमुत्थाय) मयाऽपि कलहवर्धनस्तत्र प्रेषितः।

राजा—सम्यक् कृतम्। नयसागर! देव्यै वक्तव्यं, करोतु देवी सम्भारानिति।

(कञ्चुकी तथा करोति। देवी च सोद्वेगं तथा कृतवती।)

(ततः प्रविशत्युपविष्टा सखीद्वय-सहिता रुक्मिणी)

रुक्मिणी – सहि सुअक्खिणे! कधं महुरा-णअरं गदो माहवो?
[सखि सुदक्षिणे! कथं मथुरा-नगरं गतो माधवः?]

सुदक्षिणा – अध इं? तदो वि दुआरवदिं[1] गदो। [अथ किम्? ततोऽपि द्वारवतीं गतः।]

राजा—नयसागर! कुमारकें बजाउ।

(कञ्चुकी तहिना करैत अछि। तखन रुक्मी प्रवेश करैत छथि।)

रुक्मी – महाराज! कियैक बजाओल अछि?

राजा – कुमार! हम सुनल अछि, श्रीकृष्ण पड़ाय द्वारका गेलाह। तें चेदिराज शिशुपालकें आनि करू बहिनिक विवाहक उद्योग।

रुक्मी – (सहर्ष उठि) हमहूँ कलहवर्धन कें ओतय पठओने छी।

राजा – नीक कयलहुँ। नयसागर! महारानीकें कहियनु जे ओ ओरिआन करथि।

(कञ्चुकी तहिना करैछ। देवी उद्वेग सहित तहिना कयलनि।)

(तखन दुइ सखी सहित बैसलि रुक्मिणी प्रवेश करैत छथि।)

रुक्मिणी – सखि सुदक्षिणे! की मथुरा नगर गेलाह माधव?

सुदक्षिणा – त आओर की? ओतहु सँ द्वारका गेलाह।

---

[1] – दूरवदिं – क; द्वारवदिं – ख।

रुक्मिणी - सहि ! कधंहि पुणो वि आअमिस्सदि ? [सखि कथय पुनरपि आगमिष्यति ?]

सुदक्षिणा - रसहि ! जइ दे देवस्स अणुऊलदा भविस्सदि, तुमं उण कुदो जुवावत्थादो पडिहीअसि ? [सखि ! यदि ते देवस्य अनुकूलता भविष्यति, त्वं पुनः कुतो युवावस्थातः प्रतिहीयसे ?]

(रुक्मिणी सलज्जमधोमुखी तिष्ठति ।)

सुशोभना - (मुखमुन्नमय्य[3]) सहि ! अह्मारिसीसु[4] का एत्थ लज्जा ? ता कहेउ[5] पिअसही । [सखि ! अस्मादृशीषु काऽत्र लज्जा? तत् कथयतु प्रियसखी ।]

रुक्मिणी—(गीतेनाऽऽवेदयति)—

[गीतसं०---३८]

माधव - गमन दिवस सजो, सजनी
मोहि होअ अछिन विषाद ।
जतनहु कहय न[6] पाबिअ[7], सजनी
छने छने[8] तनु अवसाद ॥

रुक्मिणी - सखि ! कहू- फेर अओताह ?

सुदक्षिणा - सखि ! जं अहाँ पर देवश्रीकृष्णक अनुकूलता होयत तँ अहाँ की कोनो युवावस्था सँ हीन भय रहलि छी ?

(रुक्मिणी लजायलि नीचाँ मुहेँ रहैत छथि ।)

सुशोभना - (हुनक मुँह उठाय) सखि ! हमरालोकनिक सन लोकक लग कोन लाज ? तँ कहू प्रियसखी ।

रुक्मिणी - (गीतक द्वारा जनबैत छथि) -

[गीतसं० - ३८]

माधव-गमन-दिवस = श्रीकृष्ण जहिया सँ गेलाह अछि ताहि दिन सँ । जहिन = जेहन । विषाद = दुःख । तनु अवसाद = देह समाप्त

२-०-क (ई पाँती नहि अछि) । ३ - मुखमुन्नमय्य - ख । ४ - अह्मारिसी सुका - ख । ५ - कधेहु - ख । ६ - ने - 'क' । ७ - पारिअ - ख । ८ - छन छन - क ।

अमिअ किरन शशि सुनिअ, सजनी
सेहओ बरिस विषधार ।
दछिन[9] पवन तह तनु दह, सजनी
मलयज परस अङ्गार ॥
भ्रमर - निकर - रवे मण्डित, सजनी
मुकुलित देखि सहकार ।
मुरुछि खसिअ महिमण्डल, सजनी
बिनु कारने कति बार ॥
कोकिल कल धुनि सुनि सुनि, सजनी
मन हुअ अधिक उदास ।
केवल जीवन राखिअ सजनी
पुन तसु दरसन आस ॥
तुअ - गुण - सिन्धु - मगन हरि, सजनी
एहन करिअ अवधान ।
अचिरे आओत यदुनायक, सजनी
सुमति रमापति भान ॥

सुशोभना - सहि सुदक्खिणे ! अच्चरिअं[10] पिअसहीए अकारण परोक्खाणुराओ, जदो एव्वं मन्तेदि[11] । [सखि सुदक्षिणे ! आश्चर्यं प्रियसख्या आकारण - परोक्षाऽनुरागो, यत एवं मन्त्रयति ।]

भेल जाइछ । अमिअ = अमृत युक्त किरणवला चन्द्रमा । तह = सँ । दह = जरैत अछि । मलयज = श्रीखण्ड चन्दनक स्पर्श । भ्रमर = भौंराक समूहक गुञ्जन सँ शोभित । मुकुलित = मञ्जरीयुक्त । सहकार = आमक गाछ । महिमण्डल = पृथ्वी पर । कल = कुहुकब । तसु = माधवक । तुअ··· ··· हरि = अहाँक समुद्र सन विशाल गुण पर श्रीकृष्ण मुग्ध छथि । एहु - ई । अवधान = ज्ञान । अचिरे = शीघ्र । यदुनायक = श्रीकृष्ण ॥

सुशोभना सखि सुदक्षिणे ! आश्चर्य थिक प्रियसखीक बिनु कारणक परोक्ष-अनुराग, किये तँ एहि प्रकारेँ विचारैत छथि ।

९ - दखिन - ख । १० - अच्छरीअं - क ख । ११ - बेवि - ख ।

सुदक्षिणा – सहि ण[12] क्खु अच्चरिअं[13] एदं, जदो –
[सखि ! न खलु आश्चर्यमिदं, यतः] (गीतेन) –

[गीतसं०--३९]

सुनिअ विदुषि सखि ! तेजि सन्देहे ।
पुरुब सकृते गुने उपज सिनेहे ॥
कारन - रहित परम अभिरामे ।
सुजन सिनेह देखिय कत ठामे ॥
[14]ससि - मनि दरव कलानिधि देखी ।
हरष चकोर - नयन तन्हि पेखी ॥
कमल कुमुद दुहु सलिल निवासे ।
रवि शशि दूर, करथि परगासे ॥
चातक तेजथि सरोवर - नीरे ।
घन—जल बिन्दु पीबि रह थीरे ॥
सुमति रमापति भन परमाने ।
मानस—प्रेम हेतु के जाने ॥

सुक्षिणा - सखि ! ई आश्चर्यक विषय नहि थिक, किये क तैं - (गीतक द्वारा):-
[गीत सं० – ३९]
विदुषि = बुधिआरि । तेजि = छोड़ि । पुरुब सुकृते = पहिलुका पुण्य सँ । अभिरामे = सुन्दर । ससि मनि दरव = चन्द्रकान्त मणि पघिलैछ । कलानिधि = चन्द्रमाकेँ । हरष = प्रसन्न होइछ । चकोर-नयन = चकोर पक्षीक आँखि । तन्हि = चन्द्रमाकेँ । पेखी = देखि । कमल " " परगासे = पानि मे रहनिहार कमल ओ कुमुद फूलकेँ दूरहु रहला पर क्रमशः सूर्य ओ चन्द्र प्रकाशित कय दैत छथि । चातक = चकवा पक्षी । तेजथि = त्याग करैत अछि । सरोवरनीरे = पोखरिक पानि । घन-जल बिन्दु = मेघक पानिक बिन्दु । मानस प्रेम हेतु = मानसिक प्रेमक कारण ॥

---

१२ - णं - ख । १३ - अच्छरीअं - क ख । १४ - सखि - ख ।

देवी—(प्रविश्य) अइ सुदक्खिणे ! अज्ज मए अधिअदरं रुक्मिणीए उव्वेअ-कारणं सुदं । तदो तुम्हाणं पिअसहिं दट्ठुं[15] समागदा । [अयि सुदक्षिणे ! अद्य मया अधिकतरं रुक्मिण्या उद्वेग-कारणं श्रुतम् । ततो युष्माकं प्रियसखीं द्रष्टुं समागता ।]
सख्यौ— देइ ! किं दाव अधिअं । [देवि ! किं तावदधिकम् ।]
देवी—(रुदती[16] गीतेनावेदयति)—

[गीत सं०---४०]

हरिक गमन सुनि, कुदिवस मने गुनि, जे मोहि भेल अनुतापे ।
नृप - दमघोष - तनय वर आओत, से सुनि दोगुन सन्तापे ॥
ओ गे साजनि!, तोरित करिअ से[17] काजे ।
त्रिभुवन - सुन्दर अवनि - पुरन्दर, पुनु आवथि यदुराजे ॥ध्रु०॥
जहिनि सुनिअ गोरि, तहिनि दुलहि मोरि, जलधि-सुता अवतारे ।
गहत तनिक[18] कर, असुर - अंस बर, करब कओन[19] परकारे ॥
धैरज धरिअ मनोरथ पूरत, रानि करिअ अनुमाने ।
केसरि - भाग[20] पाब नहि जम्बुक, सुमति रमापति भाने ॥

देवी—(प्रवेश कय) हए सुदक्षिणे ! आइ हम रुक्मिणीक अधिक उद्विग्न होयब सुनलहुँ अछि । तेँ तोहरालोकनिक सखीकेँ देखय आइलि छी ।
दुहू सखी—महारानी ! अधिक की कहू ।
देवी—(कनैत गीतक द्वारा आशय प्रकट करैत छथि —)
[गीतसं० – ४०]
कुदिवस = अधलाह दिन । अनुतापे = दुःख । नृप दमघोष तनय = राजा दमघोषक पुत्र शिशुपाल । अवनि-पुरन्दर = पृथ्वी पर इन्द्र स्वरूप । यदुराजे = श्रीकृष्ण । गोरि = गौरी । जलधि सुता = समुद्रपुत्री लक्ष्मीक अवतार । असुर = राक्षस । केसरि भाग = सिंहक भाग्य केँ । जम्बुक = गीदड़ ॥

---

१५ - दट्ठु - ख । १६ - रोदमाना - क ख । १७ - ० ख । १८...तन्हिक – ख ।
१९ – कोने - ख । २० – भाग भाग पाव - ख ।

(रुक्मिणी आकर्ण्य मूर्च्छिता भूमौ पपात ।)

देवी—अइ सुदक्खिणे ! एत्थ दाणिं को उवाओ ? सुसोहणे ! तुमं सीअलोव-आरेहिं पिअसहिं उवअर । [अयि सुदक्षिणे ! अत्रेदानीं क उपायः ? सुशोभने ! त्वं शीतलोपचारैः प्रियसखीम् उपचर ।]

(सख्यौ तथा कुरुतः । रुक्मिणी तथापि संज्ञां न लभते ।)

देवी—ण मए मन्दभाइणीए एत्थ अवत्थादव्वं । [न मया मन्दभागिन्या अत्र अवस्थातव्यम् ।] (इति निष्क्रान्ता) ।

सख्यौ—(गीतेनाऽऽक्रन्दयतः)—

[गीतसं०---४१]

चेतिअ नृपति - कुमारी । सखि आहे ।।ध्रु०।।
२१वचन सुनिअ अवधारी ।।
सतत कहिअ सबे जाने । सखि मोरि प्रान—समाने ।।
बिनु दोषे तेजिअ ताही । एहन कुबुधि होअ काही ।।
मोरि जिव कुलिश - उपामे । एहुखन न तेजय ठामे ।।

(रुक्मिणी सुनि मूर्च्छित भय पृथ्वी पर खसलीहि ।)

देवी—हए सुदक्षिणे ! एतय आब कोन उपाय अछि ? सुशोभने ! तों ठंढा उप-चार सभ सँ प्रियसखीक सेवा करहु ।

(दुहू सखी तहिना करैत छथि । रुक्मिणी तैयो होश मे नहि अबैत छथि ।)

देवी—अभागलि हम आब एतय नहि रहि सकैत छी । (बहार भय गेलीहि ।)

दुहू सखी—(गीतक द्वारा कनैत छथि)—

[गीतसं०—४१]

चेतिअ—ज्ञान करू । नृपति-कुमारी—राजकुमारी । अवधारी—विचारि । सतत—हरदम । तेजिअ—छोड़ैत छी । जिव—जीवन ।

२१—वचन न सुनिअ—क ख ।

बिहि विरचिअ परकारे । त्रिभुवन होयत असारे ।।
सुमति रमापति गाबे । धैरजें सबे फल पाबे ।।

रुक्मिणी—(चिरेणाऽवलोक्य) हला सुदक्खिणे ! कधं मन्दभाइणिं जीविअं[22] वद्‌दुं सम्भावेसि मं ? हला सुसोहणे ! किं दाणिं सीअलोवआरेहिं? जदो, [अयि सुदक्षिणे ! कथं मन्दभागिनीं जीवितां सम्भावयसि माम् ? अयि सुशोभने ! किमिदानीं शीतलोपचारैः यतः,] (संस्कृ-तमाश्रित्य श्लोकेन)—

जलार्द्रया[23] किं, नलिनी - दलेन किं
श्रीखण्ड - कर्पूर - रजश्चयेन किम् ?
आकर्णितं केन विलोकितं वा
हृद्‌रोग - शान्तिः करमार्जनेन ।।२४।।

सख्यौ—(सानन्दम्) सहि ! एव्वं करेम्ह । [सखि ! एवं कुर्वः ।] (इति नलिनी-दल चन्दनादिकमपसारयति ।) पिअसहि ! कधेहि सरीराव-त्थं । [प्रियसखि ! कथय शरीरावस्थाम् ।]

कुलिश उपामे—वज्रक समान । बिहि-विरचिअ—विधाताक बना-ओल । असारे—निस्तत्त्व ।

रुक्मिणी—(बड़ी काल पर देखि) हए सुदक्षिण कियेक एहि अभागलि कें जीवित देखबाक सम्भावना करैत छह ? हए सुशोभने ! एखन एहि शीतल उपचार सँ की होयतहु ? कियेक तँ :—

जल सँ भीजल पंखे सँ की, पुरइनिक पात सँ की, ओ श्री-खण्ड तथा कर्पूरक रजक ढेर सँ की भय सकैछ ? ई क्यो सुनलक वा देखलक अछि जे हृदय रोगक शान्ति हाथ सँ पोछला सँ होइछ ? ।।२४।।

दुहू सखी—(आनन्दपूर्वक) सखि ! सय टा करब । (पुरइनिक पात, चानन आदि हटबैत छथि ।) प्रियसखि ! कहु शरीरक अवस्था ।

२२—जीविद विस्सइ—क; जीविदनी भट्‌—ख । २३ - जलौकया...क ।

रुक्मिणी—णिसामेहि पिअसहि ! [निशामय प्रियसखि !] (पुन र्गीतेन वदति)—

[गीत सं०—४२]

सुनिअ सुचेतन साजनि, करिअ उपाय विचारि ।
कुकरम परम हमर जनि, तेँ तेजि गेल मुरारि ॥

आ रे[२४]माधु ०॥

नलिनि सयन, मलयज रज, परसे[२५] उपजत ताप ।
सुरभि-रजनि पूरन-शशि देखि[२६] अधिक हिअ काप ॥
स्रवन विकल सुनि पिक रव, कि करब हमे परकार ।
निरदय भय हिरदय हन, पचसर सर[२७] दुरबार ॥
न मिलत यदि एहि[२८] अवसर, माधव माधव-मास ।
तओ हम जीव धरब सखि, एहन करिअ जनु आस ॥
अचिरेँ पुरत तुअ अभिमत, होएत कुदिन अवसान ।
पुन बुझि मधुरिपु आओत, सुमति रमापति भान ॥
(इत्यभिधाय पिकरुतमाकर्ण्य पुन र्मूर्च्छति ।)

रुक्मिणी—सुनह प्रियसखी । (फेर गीतक द्वारा कहैत छथि)—

[गीतसं०—४२]

सुचेतन = ध्यान सँ । नलिनि शयन = पुरइनिक पातक ओछान । मलयज रज = श्रीखण्डक गर्दा । परसेँ = स्पर्श सँ । सुरभि रजनि = वसन्त ऋतुक राति । पूरन शशि = पूर्णिमाक चन्द्रमा । हिअ = हृदय । स्रवन = कान । पिक रव = कोइलीक शब्द । हन = मारैत अछि । पचसर = कामदेव । सर = बाण । दुरबार = रोकल जएबा-योग्य नहि । माधव = कृष्ण । माधव वैशाख । अचिरेँ = शीघ्र । अभिमत = अभिलाषा । अवसान = अन्त । मधुरिपु = कृष्ण ॥

(ई कहि कोइलिक कुहकब सुनि फेर मूर्च्छित होइत छथि ।)

---

२४ - ० — क । २५ - उपजत सन अनुताप - क । २६ - देखिअ - ख । २७ - ० - ख । २८ - सुअबसर - क ख ।

सुशोभना—सहि सुदक्खिणे ! अत्थि[२९] दाणिं कोवि उआओ ? [सखि सुदक्षिणे ! अस्तीदानीं कोऽप्युपायः ?)

सुदक्षिणा—सुदं मए महाराअ-समीवं देवइसी णारदो उवगदोत्ति । तदो[३०] तस्स[३१] तवोबलेण कोवि प्पदीआरो एत्थ भविस्सदि तदो अण्णेस्सेमि मुणी सरं तुमं दाव भट्टिआरिअं उवअर । [श्रुतं मया महाराज-समीपं देवर्षि र्नारद उपगतोऽस्ति । ततः तस्य तपोबलेन कोऽपि प्रतीकारोऽत्र भविष्यति । ततोऽन्विष्यामि मुनीश्वरं, त्वं तावद् भर्तृदारिकामुपचर ।]

सुशोभना—भद्दं । [भद्रम् ।]

सुदक्षिणा - (निष्क्रम्य द्वाराद् बहिः आकाशे) अए मुणीसर णारद ! [अये मुनीश्वर नारद !] (इति अत्युच्चै र्जगाद ।)

नारदः - (प्रविश्य सक्रोधम्) कुत्राऽस्ति नारदः ? काऽसि त्वं, कथं वा त्वम् एवम् आह्वयसि ?

सुदक्षिणा अज्ज! भट्टिदारिए रुक्मिणीए सही सुदक्खिणा म्हि[३२]। पणमामि अज्जं । [आर्य! भर्तृदारिकाया रुक्मिण्याः सखी सुदक्षिणाऽस्मि, प्रणमामि आर्यम् ।]

सुशोभना—सखि सुदक्षिणे ! एखन कोनो उपाय अछि ?

सुदक्षिणा—हम सुनलहुँ अछि जे महाराजक लग देवर्षि नारद अयलाह अछि । तँ हुनक तपोबल सँ कोनो प्रतिकार एतय होयत । तेँ मुनीश्वर नारदकेँ तकैत छी । तोँ तावत् कुमारीकेँ उपचार करह ।

सुशोभना—बड़ दीब ।

सुदक्षिणा—(बहार भय द्वारसँ बाहर आकाश दिस) अओ मनुीश्वर नारद ! (जोरसँ चिकरलीहि ।)

नारद - (प्रवेश कय क्रोधपूर्वक) कहाँ छथि नारद ? के थिकहु तोँ, किऐक एना सोर करैत छह ?

सुदक्षिणा - आर्य ! राजकुमारी रुक्मिणीक सखी सुदक्षिणा छी हम । आर्यकेँ प्रणाम करैत छी ।

---

२९ - आये - क, अत्थ - ख । ३० — ततः - क ख । ३१ — तस्स - ख ।
३२ - म्हि - ख ।

नारदः—रुक्मिण्याः प्रसादभाजनं[33] भव । अमुना मार्गेण गतो देवर्षिः ।

(सुदक्षिणा अन्यतो गत्वा तथैव जगाद । पुनः किञ्चिदाकार—गोपनं कृत्वा स एव मिलितस्तथैवोत्तरं दत्तवान् । एवं कतिवारं[34] तयोराभाषणं वृत्तम् । ततो[35] लक्षणैः संलक्ष्य पादयोः पपात ।)

सुदक्षिणा—मए लक्खणेहिं विण्णादं तुमज्जेव सो देवइसित्ति[36] ।

[मया लक्षणैः विज्ञातं, त्वमेव स देवर्षिरिति ।]

नारदः—(दण्डमुद्यम्य) अयि ! मुञ्च, मुञ्च । वृद्धस्य मे विप्रस्य कथं तपोविघ्नमाचरसि ? नो चेद् दण्डेन ताडयामि शापेन वा ।

सुदक्षिणा—णत्थि मे सम्पदं जीविदासा पिअसहीए दुक्खपडीआरो[37] जाव ण भोदि । [नास्ति मे साम्प्रतं जीविताशा प्रियसख्याः दुःखप्रतीकारो यावन्न भवति ।] (इति गाढं चरणौ धृतवती ।)

नारदः—(उच्चैर्विहस्य) साधु साधु, यथार्थनामधेया सर्वकार्य-कुशलाऽसि त्वम् । स एवाहं मुनिः । कथय प्रयोजनम् ।

नारद—रुक्मिणीक कृपापात्र होअह । एही बाटेँ देवर्षि गेलाह ।

(सुदक्षिणा आन ठाम जाय ओहिना बाजलि । फेर किछु रूप छपाय ओएह भेटलथिन ओ ओहिना उत्तर देलथिन। एहिना कइयेक बेर दुहू गोटा मे गप्प भेल । तखन लक्षणसँ चिन्हि पएर पर खसलि ।)

सुदक्षिणा—हम लक्षण सँ बुझलहुँ, अहीँ ओ देवर्षि थिकहुँ ।

नारद—(लाठी उठाहि) हए ! छोड़ह, छोड़ह। हमरा वृद्ध ब्राह्मणकेँ तपस्या मे विघ्न कियैक करैत छह ? नहि त लाठी स पिटबहु वा श्राप देबहु ।

सुदक्षिणा—एखन हमर सखीक जीवनक आशा नहि अछि यावत् दुखक प्रतीकार नहि होइछ । (कसिकेँ पएर गहि लैछ ।)

नारद—(जोर सँ हँसि) वाह, वाह । अर्थक अनुरूपे नामवाली सभकाज मे पटु छह तोँ । हम ओएह मुनि छी । कहह प्रयोजन ।

---

३३ – भना—ख । ३४ – वारानयो – ख । ३५ – ००० ख ।
३६ – ईसित्ति – ख । ३७ – पडीआरं – ख ।

सुदक्षिणा—संपदं जीविद-संसअं णो पिअसही संपत्ता । तदो णत्थि दाणिं परिहासस्स[38] समओ । ता तत्थ गदुअ[39] पिअसहीए जीविद-प्पडीआरं[40] करेदु अज्जो । [साम्प्रतं जीवितसंशयं नः प्रियसखी सम्प्राप्ता । ततो नास्ति इदानीं परिहासस्य समयः । तत् तत्र गत्वा प्रियसख्याः जीवितप्रतीकारं करोत्वार्यः ।]

(नारदः तया सह कन्याभवनं प्रविश्य कमण्डलु-जलेन रुक्मिणीमभिषिञ्चति । पुष्पादिकं क्षिपति । रुक्मिणी संज्ञां लब्ध्वा उपविश्याऽवलोकयति ।)

रुक्मिणी—(जनान्तिकम्) सहि ! को एसो दिअवरो ? [सखि ! क एष द्विजवरः ?]

सुदक्षिणा—सहि ! एसो ज्जेव मुणीसरो णारदो सिरिकण्हं सिग्घं आणेदुं समत्थो । [सखि ! एष एव मुनीश्वरो नारदः श्रीकृष्णं शीघ्रमानेतुं समर्थः ।]

(रुक्मिणी सहर्षमुत्थाय पुनः पुनः प्रणम्य स्वहस्तेनैव पादौ

सुदक्षिणा—एखन हमर सखीक प्राण सन्देह मे पड़ि गेल अछि । तेँ एखन हँसीक समय नहि अछि । अतः ओतय जाय प्रियसखीक जीवाक उपाय करथु आर्य ।

(नारद हुनका संग कन्याभवनमे प्रवेश कय कमण्डलक जल सँ रुक्मिणी केँ सिक्त करैत छथि। फूल आदि फेकैत छथि । रुक्मिणी होश मे आबि बैसिकेँ तकैत छथि ।)

रुक्मिणी—(कनफुसकी कय) सखि ! ई ब्राह्मणश्रेष्ठ के थिकाह ?

सुदक्षिणा—सखि ! इयैह मुनीश्वर नारद श्रीकृष्णकेँ शीघ्र अनबा मे समर्थ छथि ।

(रुक्मिणी सहर्ष उठि बारंबार प्रणाम कय अपनहि हाथेँ

---

३८ – पडीहा – ख । ३९ – गहुअ – ख ४० – पडीआरं – ख ।

प्रक्षाल्य तज्जलं शिरसि दधाति । अत्यादरेणातिथिसत्कारं कृत-
वती ।)

नारदः—राजपुत्रि ! मनोरथ-सिद्धि द्रु तं तवाऽस्तु । तवादरेणातितुष्टोऽ-
स्मि । किं वा तव प्रियमर्थं मया सम्पादनीयम् ?

(रुक्मिणी सलज्जमधोमुखी तिष्ठति ।)

नारदः—(विहस्य) प्रच्छन्ने न मया सर्वमेव श्रुतम् । (इति तदुक्तं गीतादिकं
पठति ।)

(रुक्मिणी अतीव लज्जते)

सुदक्षिणा—(मुखमुन्नमय्य) पिअसहि ! का एत्थ तवोधणे लज्जा ? एदेन
सव्वं जाणिदं ज्जेव । ता कधेदु पिअसही । कज्जसिद्धी झत्ति भोदु ।
[प्रियसखि ! काऽत्र तपोधने लज्जा ? एतेन सर्वं ज्ञातमेव । तत्
कथयतु प्रियसखी । कार्यसिद्धि र्झटिति भवतु ।]

रुक्मिणी—सुणोदु अज्जो । [शृणोत्वार्यः ।] (गीतेनावेदयति)—

दुनू पएर पखारि, ओ जल माथ पर लेत छथि । अत्यन्त आदर
सँ अतिथि-सत्कार करैत छथि ।)

नारद—राजपुत्री ! अहाँक मनोरथ शीघ्र सिद्ध हो । अहाँक आदर सँ
अत्यन्त सन्तुष्ट छी । आब की अहाँक प्रियकार्य हम करी ?

(रुक्मिणी लजायलि नीचाँमुहेँ छथि ।)

नारद—(हँसि) नुकायकेँ हम सबकिछु सुनलहुँ । (हुनक कहल गीत आदि
पढ़ैत छथि ।)

(रुक्मिणी अत्यन्त लजाइत छथि ।)

सदक्षिणा—(हुनक मुह उठाय) प्रियसखि ! एहि तपस्वीक लग कोन लाज ?
ई तँ सबटा बुझनहि छथि । तेँ कहियनु प्रियसखी । कार्यसिद्धि
झटदय हो ।

रुक्मिणी—सुनल जाओ आर्य । (गीतक द्वारा कहैत छथि)—

[गीत सं० – ४२]

मुनिवर ! करिअ तहिन परकार ।
नगर द्वारका गए पुनु आनिअ, तोरित नन्दकुमार ॥ध्रु०॥
दनुज - मनुज अवतार महीतल, चेदि - नृपति शिशुपाल ।
कुमरे जोहल वर, से यदि गहत कर, जीव तेजब तत्काल ॥
तीनि - भुवन पति अनुगत जन गति, करुणामय गोपाल ।
समुचित वर हमे मन अवधारल तेजि सकल महिपाल ॥
गिरिनन्दिनि पूजय हम जाएब, बाहर देव - अगार ।
तखने गहथु कर देव गदाधर, तेहि पय अछि सुविचार ॥
सानन्द भए मुनिराजे कहल पुनु, मने जनु मानिअ आन ।
नृप - कुमरि ! अभिलाष पुरत तुअ, सुमति रमापति भान ॥

नारदः—

यास्यामि तूर्णं नगरीं तदीयां
तपोबलात् कृष्णमिहाऽऽनयामि ।
रामेण सार्धं यदुभिः समेतं
प्राप्तं विजानीहि कुमारि ! मा शुचः ॥२५॥

रुक्मिणी—(जनान्तिकम्) पिअसहीओ ! पुणोवि ममावत्थं विण्णावेहि अज्जम् ।
[प्रियसख्यौ ! पुनरपि ममाऽवस्थां विज्ञापय आर्यम् ।]

[गीतसं० – ४२]

तहिन = तेहन । परकार = उपाय । गए = जाय । तोरित =
तुरत । दनुज-मनुज = नरराक्षस । चेदि नृपति = चेदि देशक
राजा । अनुगत = शरणागत । अवधारल = विचारल । गिरि नन्दिनि
= गिरिजा । देव अगार = देवमन्दिर । गदाधर = गदाधारी
श्रीकृष्ण । तेहि पय = हुनक चरणमे ॥

नारद—हम श्रीकृष्णक नगरी द्वारका शीघ्र जायब ओ तपोबल सँ श्रीकृष्णकेँ
एतय आनब । बलरामक संग यादव सभ सँ युक्त श्रीकृष्णकेँ एतय
पहुँचले बुझू । कुमारी ! शोक जनु करी ॥२५॥

रुक्मिणी—(कनफुसकी) प्रिय सखीलोकनि ! आओरो हमर दशा आर्यकेँ
बुझबियनु ।

सख्यौ—मुणिराअ ! पिअसहीए अवत्थं वि कहणिज्जं सिरिकण्हे । [मुनिराज! प्रियसख्या अवस्थाऽपि कथनीया श्रीकृष्णाय ।]

नारदः—सर्वं ज्ञातमेव मया, तथापि पुनः कथ्यताम् ।

सख्यौ—(गीतेन कथयतः—)

[गीतसं०--४४]

पुरुबहि ओ रे !
ससिमुखि परिजन - मुखे सुन[४६], ए कि तुअ गुन,
अनुखने नेह उपज दुन[४७] ॥

विधिवसें ओ रे !
वदन - इन्दु तुअ देखि धनि, ए कि भेलि जनि,
प्रेम - पयोनिधि निमगनि[४८] ॥

अकमिते ओ रे !
कोकिल पञ्चम कल धुनि, ए कि सेहे सुनि,
पुनु पुनु मुरुछ[४९] दुसह गुनि ॥

तलपहि[५०] ओ रे !
अति कोमल नलिनी - दल, ए कि विअ भल,
परसें दगध होअ अनुपल ॥

दुहू सखी—मुनिराज ! प्रियसखीक दशा सेहो श्रीकृष्णकें कहल जाय ।

नारद—सब टा हमरा बुझले अछि, तथापि पुनः कहू ।

दुहू सखी—(गीतक द्वारा कहैत छथि)—

[गीतसं० – ४४]

पुरुबहि = पहिनहि । ससिमुखि = चन्द्रमुखी । परिजन मुखे = परिवारक मुहें । अनुखने = सतत । नेह = स्नेह । दुन = द्विगुण। विधिवसें = संयोग सँ । वदन-इन्दु तुअ = अहाँक चन्द्रमुख। प्रेमपयोनिधि = प्रेमक समुद्र मे । निमगनि = डूबलि । अकमिते =

---

४६ - सुनु - ख । ४७ - दुनु - ख । ४८—निगमनि—क ख । ४९—पुन पुन मुरछु—ख । ५० - तलपति - ख ।

अवधिहु ओ रे !
न मिलत यदि निरदय हरि, ए कि छन भरि[५१],
न जिलति आलि कोनहु परि ॥

सुनु धनि ओ रे !
सुमति रमापति बुझि कह, ए कि[५२] थिर रह,
पुरत मनोरथ[५३] हरि तह ॥

नारदः— [५४]वाच्यं मयाऽन्तःस्थमशेषतोऽस्याः
तत्सन्निधौ राजकुमारिकायाः ।
यथाऽऽगमिष्यत्यरविन्दनेत्र—
स्तत् साधनीयं बहुना किमत्र ॥२६॥

(इत्याकाशमार्गेण निष्क्रान्तः)

सख्यौ – भट्टिदारिए! अम्हे इमं [५५]हरि - आअम – वुत्तन्तं देवीए णिवेदेम्ह[५६]।
[भर्तृदारिके ! आवाम् इमं हर्यागम वृत्तान्तं देव्यै निवेदयावः ।]
(इति तथा कुरुतः ।)

अकस्मात्, एकाएक । तलपहि = बिछाओन पर । नलिनी-दल = पुरइनिक पात । परसें = स्पर्श सँ । दगध = जरैत । अवधिहु = निर्धारित समय तक । हरि = कृष्ण । आलि = सखी ।।

नारद—श्रीकृष्णक लग हम एहि राजकुमारीक हृदयस्थित सकल भाव बाजब, जेना कय कमलनयन श्रीकृष्ण एतय अओताह से हम करब । विशेष एतय की कहू ॥२६॥

(ई कहि आकाश मार्ग सँ बहार भय गेलाह ।)

दुहू सखी – राजकुमारी ! हमरा दुहू गोटय श्रीकृष्णक आगमनक समाचार महारानी कें कहि अबैत छियनि। (तहिना करैत छथि ।)

---

५१ - छन भरि भरि - ख । ५२—की—क ख । ५३—०—ख ।
५४—वाच्यस्मया ज्ञेयमशेष—ख ।
५५ – हरिमच्चुत्तस्सं – ख । ५६ – णिवेदेमि – ख ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

।। इति रुक्मिणी-परिणये नारदप्रेषणं नाम पञ्चमोऽङ्कः ।।

(सभ बहार भय गेल)

रुक्मिणी-परिणय मे 'नारदकें पठाएब' नामक
पाँचम अङ्क समाप्त

अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति शिशुपालमानीय कलहवर्द्धनः)

कलहवर्द्धनः—(कुमार-समीपमागत्य) युवराज !
सम्प्राप्तश्चैद्यभूपस्तव नगरमिदं मागधाद्यैः समेतः
पूर्यन्तां रत्नकुम्भाः सुविमल सलिलैः पल्लवासक्तवक्त्राः ।
न्यस्यन्तां तोरणानि प्रतिभवनमतो दीयतां दीपपङ्क्तिर्
विप्राः सम्पूर्णकामाः श्रुतिसुभगतरं शान्तिमन्त्रं पठन्तु ।।२७।।

(नेपथ्ये दुन्दुभि-ध्वनिः)

छठम अङ्क

(शिशुपाल कें आनि कलहवर्धन प्रवेश करैछ ।)

कलह०—(कुमार-रुक्मीक समीप आबि) युवराज !
मगधराज जरासन्ध प्रभृतिक सहित चेदिराज शिशुपाल अहाँक नगर पहुँचि गेल छथि । पवित्र जल सँ भरल पल्लव सँ युक्त मुँहवला रत्नक घैल सभ राखल जाय । प्रत्येक भवनक सोझाँ तोरण (मेहराब) सजाओल जाय । दीपक पाँती राखल जाय ओ पूर्णमनोरथ ब्राह्मणलोकनि वेदक मधुर शान्तिमन्त्र पढ़थु ।।२७।।

(नेपथ्य मे बाजाक आवाज)

राजा—सर्वं भविष्यति । युवराज ! भवता चैद्यराजं प्रतीक्ष्य तेषु तेषु वेश्मसु निवेशनीया वरयात्रिका नृपाः, परिचरणीयाश्च ।

(रुक्मी सहर्षमुत्थाय निष्क्रम्य च कलहवर्द्धनेन सह सैन्यमालोकयति । तत्र गीतम्—)

[गीत सं--४५]

आएल नृप दमघोष कुमार । भीषम भूपति[1] भवन दुआर ।।
रथ मातङ्ग तुरङ्ग दुरन्त । कोने तसु गनत पदाति अनन्त ।।
बहुविध[2] बरन पताका भास । जनि सुरपति धनु उगल अकास ।।
घन धुनि सन रन दुन्दुभि बाज । निरमल बसन भवन चय छाज ।।
तसु सयना कत करब बखान । हरिपद प्रणत रमापति भान ।।

(रुक्मी सानन्दं सर्वेषां विनयादिकमाचरति)

राजा—सब होयत । युवराज ! अहाँक चेदिराजक प्रतीक्षा कय निर्धारित घर सभ मे बरियाती मे आयल राजासभ कें ठहराउ ओ स्वागत करू ।

(रुक्मी सहर्ष उठि, बहार भय कलहवर्धनक संग सेनासभ कें देखैत छथि । ततय गीत—)

(रुक्मी आनन्दपूर्वक सभक प्रार्थना आदि करैत छथि ।)

[गीतसं०—४५]

दमघोष-कुमार = राजा दमघोषक पुत्र शिशुपाल । मातङ्ग = हाथी । तुरङ्ग = घोड़ा । दुरन्त = अतिबलशाली । पदाति = पैदल सेना । बरन = रंगक । भास = शोभित । सुरपति-धनु = इन्द्रधनुष, पनिसोखा । घन धुनि = मेघक गर्जन । रन-दुन्दभि = युद्धक बाजा निरमल बसन = स्वच्छ वस्त्र । भवन-चय = भवन सभ मे । छाज = शोभित । तसु = हुनक (शिशुपालक) । सयना = सेना ।

---

1 - नृपतिक - क । 2 - विधि - ख ।

रुक्मिणी –(आकर्ण्य) सहि ! कहिं दाणिं[3] खणे खणे दुन्दुही ताडीयदि ?
[सखि ! क्व इदानीं क्षणे क्षणे दुन्दुभी ताड्यते ?]
सख्यौ—सहि ! आअदो क्खु हदासो [4]चेदि-भूवई । [सखि ! आगतः खलु हताशः चेदिभूपतिः ।]
रुक्मिणी –(सबाष्पं गीतेन वदति –)

[गीतसं०--४६]

उपगत भेल शिशुपाल । न देखिअ देव गोपाल ।।
साजनि ।।ध्रु०।।
अभगति अति बुझि मोरि । विमुखि भेलि जनि गौरि ।।
की [5]जनि विधि भेल बाम । तें[6] नहि[7] पुर मन काम ।।
पुरुब कलुष-चय जानि । न गहल हरि मोर पानि ।।
जदि न[8] आओत ब्रजराज । मोहि जीवन नहि काज ।।
सुमति रमापति भान । अवस आओत भगवान ।।
सख्यौ – पिअसहि ! समस्ससिहि समस्ससिहि । [प्रियसखि ! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।]

रुक्मिणी—(सुनि) सखि ! कतय एखन लगले लगले बाजा बजैछ ?
दुहू सखी—सखि ! आबि गेल दैवजरुआ (जकर आशा मारल छैक) शिशुपाल।
रुक्मिणी—(नोर सहित गीतक द्वारा बजैत छथि –)

[गीतसं० ४६]

उपगत = उपस्थित । अभगति = अभक्ति । विधि = विधाता, भाग्य । बाम = विपरीत । कलुष चय = पापक ढेर । पानि = हाथ । ब्रजराज = कृष्ण । अवस = अवश्य ।।

दुहू सखी—प्रिय सखि ! धैर्य धरू, धैर्य धरू ।

---

३ - दाणि हमणो खणो दुन्दही - ख । ४ - चेदि चेदि भूवई - ख ।
५ - कीदहु - ख । ६ = X - ख । ७ - ने - ख ।

रुक्मिणी - कधं मुणीसरो वि ण आअदो ? [कथं मुनीश्वरोऽपि नागतः ?]
(वामाक्षिस्पन्दनादिकं सूचयित्वा पुन गीतेन वदति–)

[गीत सं० – ४७]

किए बहु[8] अकमित सञ्चर, उर भुज लोचन बाम ।
कहिअ विचारि विदुषि[9] सखि, अबहु पुरत मोर[10] काम ।।
जओ किछु पुरुब कयल हमे, सुरमन्दिर निरमान ।
व्रत उपवास नियम विधि, बसन विभूषण दान ।।
कञ्चन रजत तुला देल, विरचल विमल तड़ाग ।
तओ हरि हमर गहथु कर, दुर कय सकल अभाग[11] ।।
[12]नगर निकट उपगत हरि आदि, करिअ अनुमान ।
सखिगन भाष सगुन बुझि, सुमति रमापति भान ।।
(ततः प्रविशति नारदः)
नारदः[13]– नृपकुमारिके ! दिष्ट्या वर्द्धसे । समागच्छति श्रीकृष्णः ।

रुक्मिणी—की नारदो नहि अयलाह ? (बामा आँखि फड़कब सूचित कय फेर गीतक द्वारा बजैत छथि-)

[गीतसं - ४७]

अकमित = अकस्मात्, एकाएक । सञ्चर = फड़कैत अछि । उर भुज = छाती, बाँहि ओ आँखि तीनूक बामा भाग । विदुषि = बुधिआरि । सुरमन्दिर = देवताक भवन । कञ्चन रजत = सोना ओ चानी । तुला देल = तुलादान कयल (तराजू पर अपन शरीरक बराबर सोनाक दान कयल ।) विरचल = बनबाओल । तड़ाग = पोखरि । उपगत = आयल । भाष = बजैछ ।।

(तखन नारद प्रवेश करैत छथि ।)
नारद राजकुमारी ! भागमन्ति छी । अबैत छथि श्रीकृष्ण ।

---

८ - किअवहु - ख । ९ - विधु मुखि - क । १० - मन - क । ११ - अनुमान - ख । १२ - - ख (...)

रुक्मिणी—(सानन्दं प्रणम्य[14] अतिसत्कारं कृत्वा) सहि सुदक्खिणे ! विण्णावेहि[15] अज्जं, कुदो वट्टदि[16] दाणिं अज्जउत्तो ? [सखि सुदक्षिणे ! विज्ञापय आर्यं, कुत्र वर्तते इदानीमार्यपुत्रः ?]

सुदक्षिणा—(पृच्छति ।)

नारदः—(श्लोकेन—) मम वचनमशेषतो निशम्य
खगमारुह्य हरिः पुरः प्रतस्थे[17] ।
यदुबलमुपनीय रौहिणेय-
स्तमनुजगाम धृतायुधो रथस्थः ॥२८॥

ततश्चार्धमार्गे तवाश्वासनार्थं तेनानुज्ञातस्तपोबलेन वैनतेयादपि प्रागुपगतोऽस्मि ।

रुक्मिणी - (सानन्दं प्रणम्य पूजयति ।)

नारदः—मया पुनरपि श्रीकृष्णनिकटमेव तव वृत्तान्तकथनाय गम्यते । (इति निष्क्रान्तः ।)

रुक्मिणी—(आनन्दपूर्वक प्रणाम कय ओ अतिसत्कार कय) सखि सुदक्षिणे ! पुछियनु आर्य नारदकें जे कतय छथि एखन आर्यपुत्र (मन मे संकल्पित पति श्रीकृष्ण) ।

सुदक्षिणा—(पुछैत छथि ।)

नारद—(श्लोकक द्वारा) -- हमर वचन पूरा पूरा सुनिकें गरुड़ पर चढ़ि श्रीकृष्ण प्रस्थान कयलनि । यादव-सेना लय बलराम अस्त्र धारण कय रथ पर चढ़ि हुनक पाछ सँ बिदा भेलाह ॥२८॥

तखन आधा बाट मे अहाँक आश्वासनक हेतु हुनक आज्ञा पाबि तपस्याक बलें गरुड़हु सँ पहिनहि आयल छी । .

रुक्मिणी - (आनन्दपूर्वक प्रणाम कय पूजा करैत छथि ।)

नारद - हम पुनः श्रीकृष्णक समीप अहाँक हाल-चाल कहबाक लेल जाइत छी । (बहार भय गेलाह ।)

14—प्रणमति सत्कारं - ख ।
15 - विण्णवेहि - क ख । १६ - वट्टदि - ख । १७ - प्रतस्थौ - ख ।

(नेपथ्ये शङ्खध्वनिः)

राजा—(आकर्ण्य) नयसागर ! पाञ्चजन्यस्यैव ध्वनिरुपलक्ष्यते । तदवगम्यताम् ।

कञ्चुकी—(अवलोक्य पुनरागत्य) महाराज ! निर्णीतं मया ।(श्लोकेन वदति) –
आयातो मधुसूदनस्तव पुरं रामादिभिर्यादवैः
सार्धं दैत्यरिपुः खगेन्द्रमचिरादारुह्य सर्वेश्वरः ।
तं चाऽनीय विनीय सम्प्रति पुरो गत्वा समाधीयतां
सम्यक् पूजनमस्य तेन भविता पूर्वापराधक्षमा ॥ २९॥

राजा – सम्यगुपदिष्टम् । (इति बहिर्गत्वा श्रीकृष्णस्य आतिथ्य-पूजनादिकं विधाय सैन्यमुपवेश्य पुनरायातः ।)

(ततो नगरस्त्रियः श्रीकृष्णमवलोक्य गायन्ति—)

(नेपथ्य मे शङ्खक आवाज)

राजा (सुनि) नयसागर ! पाञ्चजन्य शंखक सनक ध्वनि बुझि पड़ैछ । से बुझू तँ ।

कञ्चुकी – (देखि फेर आबि) महाराज ! हम निर्णय कयल * (श्लोकक द्वारा वर्णित छथि) -

अपनेक नगर मे बलराम आदि यादवक संग गरुड़ पर चढ़ि सर्वेश्वर मधुसूदन दैत्यारि श्रीकृष्ण शीघ्रता सँ आबि गेलाह अछि । एखन आगू जाय हुनका आनि विनती कय विधिपूर्वक हुनक पूजा कयल जाओ, ताहि सँ पहिलुका अपराधक क्षमा भय जायत ॥२९॥

राजा—नीक विचार देलहुँ । (बाहर जाय श्रीकृष्णक अतिथिसत्कार औ सेनाक रहबाक व्यवस्था कय पुनः अबैत छथि ।)

(तखन नगरक स्त्रीसभ श्रीकृष्णकें देखि ...

[गीतसं०--४८]

इन्दु[1] - विनिन्दक ओ रे, हरिमुख ।
देखितहि हरल सकल दुख ॥
बहुत - जनम तपे ओ रे, पाओल ।
लोचन - युगल जुड़ाओल ॥
रूप उपमा नहि ओ रे, होअ कहि ।
जनि[18] रतिपति अवतरु महि ॥
विहि कुदिवस मोर ओ रे भेटल ।
तें जनि माधव भेटल ॥
हरषि गहथु हरि ओ रे, तसु कर ।
कुमुदिनि मिलथु सुधाकर ॥
सुमति रमापति ओ रे, दिढ़ कह ।
कुदिवस नहि निरवधि रह[19] ॥

श्रीकृष्णः—(सैन्यादिकं निवेश्य स्वयं विश्रम्य च नारदं प्रति, जनान्तिकम्) देवर्षे ! कथ्यतां तदीया वार्ता ।

नारदः – तद्वार्ता मया द्वारवत्यामेवोक्ता । तथाप्याऽऽकर्ण्यताम्[20] । (गीतेन वदति—)

गीतसं०—४८

इन्दुविनिन्दक = चन्द्रमाक निन्दा करय वला । लोचन-युगल = दुनू आँखि । रतिपति = कामदेव पृथ्वी पर अवतार लेने होथि । विहि कुदिवस = भाग्यक अधलाह दिन । सुधाकर = चन्द्रमा। दिढ़ = निश्चय॥

श्रीकृष्ण - (सेना आदिक समावेश कय, स्वयं विश्राम कय नारदक प्रति कनफुसकी कय) देवर्षि ! कहू हुनक समाचार ।

नारद—हुनक हालत तँ हम द्वारके मे कहलहुँ । तथापि सुनू । (गीतक द्वारा कहैत छथि ।)

१ - एहि गीत केँ उमापतिक गीत संग्रह मे भ्रम सँ राखल गेल अछि । द्रष्टव्य डॉ० रामदेव झा –'उमापति' - पृ० ५६ । १८ - जन - ख ।
१९ - रहु - ख । २० - कर्णय - ख ।

[गीतसं०--४९]

आ हे माधव ! कि कहब तसु परितापे ।
तुअ गुन लुबुधि मुगुधि रह बरतनु,
अनुखन परिजन कापे ॥ध्रु०॥
देह अनल धर, गहन माल धर,
तलप अलप न सोहावे ।
चांद गरल वम, हार उरग सम,
नयन नीन्द नहि आवे ॥
मलय पवन वह, सेहओ ने धनि सह,
अधिक धाह[21] उपजावे ।
चानन[22] परस परस नहि मानए,
दरस तरस मने[23] आवे ॥
मुरछि मुरछि खस, मेदनि[24] परवस,
जतनहु सखि न सम्भावे ।
जीवन धर धनि, अवधि आस गनि,
केवल तुअ अभिलाषे ॥
हरि उपगत भेल, कुदिवस दुरि गेल,
पूरल सबे अभिमाने ।

[गीतसं०—४९]

तसु परितापे = हुनक दुःख । मुगुधि = मुग्ध । बरतनु = सुन्दरी । परिजन कापे = परिवारक लोक हुनक दशा देखि कँपैत अछि । अनल आगि । तलप = तल्प, ओछान । अलप = थोड़बहु । गरल वम = विष बमिलैत अछि । उरग = साप। मलय पवन = मलयाचलक हवा (दछिनाही)। परस = स्पर्श । दरस = दर्शनहि सँ । तरस = त्रास, डर । मेदनि पृथ्वी पर । परवस = पराधीन भय । सम्भावे = वर्जैत छथि । अवधि

२१ - दाह - ग । २२ - चन्दन - ग । २३ - मन - क ।
२४ - से धनि पर बस - क ।

वैरज अभिमत, पाव शुभ[२५] नखत,
सुमति रमापति भाखे ॥

श्रीकृष्णः—(स्वगतम्) अहो प्रमादः ! मम कारणादेवं दुःखमनुभवति नृपकुमारिका ? (प्रकाशम्) देवर्षे ! साम्प्रतं तत्सन्निधौ भवता एवं वाच्यम् (श्लोकेन):—

यथा विषीदत्यनिशं मृगाक्षी
तथैव [२६]सन्तप्तमवेहि मामपि ।
भूपाल—वर्गान् परिभूय तत्करं
हृत्वा[२७] ग्रहीष्यामि बलात् प्रभाते ॥३०॥

नारदः—भद्रम् । तामाश्वास्य त्वरार्थं कुमारं नृपं देवीं च नियोज्य तस्य हरणावसरे पुन र्देवमवलोकयामि । (इति निष्क्रम्य तथा कृतवान् ।)

आस = विरहक सीमा (समाप्तिक) आशा । तुअ अभिलाषे = अहाँक प्राप्तिक मनोरथ। हरि उपगत = श्रीकृष्ण उपस्थित । अभिमत = अभीष्ट । शुभ नखत = शुभ नक्षत्र = शुभ समय ।

श्रीकृष्ण - (स्वगत) हाय रे हमर गलती ! हमरे कारणे एना दुःखक अनुभव कय रहलि छथि राजकुमारी । (प्रकाश) देवर्षि ! एखन हुनका लग जाय अहाँ ई कहबनि । (श्लोकक द्वारा) - जहिना हरिणसनक आँखिवाली ओ दुःखी छथि तहिना हमरो सन्तप्त जानथि । काल्हि भिनसर राजासभकें बलपूर्वक दबाय हुनक हरण कय लय जयबनि ॥३०॥

नारद—बड़ दीव। हुनका आश्वासन दय, शीघ्रताक हेतु कुमार, राजा ओ महारानीकें नियुक्त कय रुक्मिणीक हरणक अवसर मे देवक दर्शन करब । (बहार भय तहिना कयलनि ।)

---

२५ - सुजन सत - क । २६ — तच्चेतुमवेहि - ख । २७ — धृत्वा गमिष्यामि — क ।

(नेपथ्ये—भो भो ! जरासन्ध-प्रभृतयो नृपाः ! प्रभात-समयो वृत्तस्ततः[२८] सज्जीभवन्तु भवन्तो[२९]ऽम्बिका-गृहगमनाय । तत्पूजनाय रुक्मिणी गमिष्यति । तद् रक्षार्थं भवद्भि र्यतितव्यमिति ।)

(पुन र्नेपथ्ये दुन्दुभि-ध्वनिः)

बलदेवः—(आकर्ण्य) मत्सैनिका अपि सज्जीभवन्तु ।

(ततः सर्वे यादवास्तथाऽऽचरन्ति ।)

(ततः प्रविशति पूजासम्भार व्यग्रकराभिः परिचारिकाभिः समं देवी ।

देवी—(कन्याभवनं गत्वा सहर्षम्) अइ सुदक्खिणे ! [३०]सुसोहणे ! तुम्हेंहि रुक्मिणीए समं सिरिगोरिए मन्दिरं[३१] गन्तव्वं । ता उत्थेहि । [अयि सुदक्षिणे ! सुशोभने ! युवाभ्यां रुक्मिण्या समं श्रीगौर्या मन्दिरं गन्तव्यम् । तद् उत्तिष्ठतम् ।]

(नेपथ्य मे— 'अओ जरासन्ध आदि राजालोकनि ! भोर भय गेल, तें तैयार होउ अहाँसभ गौरीक मन्दिर जयबाक लेल । हुनक पूजाक हेतु रुक्मिणी जयतीहि । हुनक रक्षाक हेतु अहाँलोकनि यत्न करब'' ।)

(फेर नेपथ्य मे बाजाक आवाज)

बलदेव—(सुनि) हमरो सैनिक तैयार होअओ ।

(तखन सभ यादव तहिना करैत छथि ।)

(तखन पूजाक सामग्री सँ व्यस्त हाथवाली परिचारिकासभक संग महारानी प्रवेश करैत छथि ।)

देवी—(कन्याभवन जाय सहर्ष) अए सुदक्षिणा ! सुशोभना अहाँ दुहू गोटय रुक्मिणीक संग श्रीगौरीक मन्दिर जाउ । तें उठैत जाउ ।

२८—सत्.—ख । २९ - × - ख । ३० - स्वरसाहरण - क । ३१ - × - क (एतय सँ "श्रीगौरी" तक अभाव) ।

(सख्यौ रुक्मिणी[३२] करे गृहीत्वा उत्थापयतः[३३] । ततः सर्वाः श्रीगौरी[३४]-भवनं प्रति चलिताः । तत्र गीतम् –)

[गीतसं० – ५०]

निअ हित[३५] मने अवधारी ।
गौरि पुजय[३६] चलु राजकुमारी ॥ध्रु०॥
पुर - वनिता तसु सङ्ग अनेके ।
रूपे[३७] मनोरम निपुन विवेके ॥
अरुन - बसने जित अरुनक जोती ।
भूषन मनि कञ्चन गजमोती ॥
लोहित फूल अनुलेपन माले ।
सिन्दुर नेओज[३८] तमोर विसाले ॥
गुग्गुल अगर धूप करें दीपे ।
लय सखिजन तसु चलय समीपे ॥
सुमति रमापति कह दिढ़ जानी ।
सबे अभिमत फल पुरथु भवानी ॥

सख्यौ—(जनान्तिकम्) सहि ! सम्पदं हिअअट्टिदं हरिस-वुत्तन्तं कधेहि ।
[सखि ! साम्प्रतं हृदयस्थितं हर्षवृत्तान्तं कथय ।]

(दुहू सखी रुक्मिणीकेँ हाथ धय उठबैत छथि । तखन सभ श्रीगौरीक भवन दिस विदा होइत छथि । ताहि प्रसंगक गीत—)

[गीतसं० - ५०]

निअ = अपन । अवधारी = बूझि । पुर वनिता = नगरक स्त्रीगण । मनोरम = सुन्दरि । निपुन = पटु । अरुन-बसने = लाल वस्त्र सँ । अरुनक = प्रातःकालीन सूर्यक । मनि कञ्चन = मणि ओ सोना । लोहित = लाल । अनुलेपन = चानन । नेओज = नैवेद्य । तमोर = पान । दिढ़ = निश्चय । अभिमत = मनोरथ॥

दुहू सखी—(कनफुसकी कय) सखि ! एखन हृदयक हर्षक समाचार कहू ।

---

३२ - रुक्मिणी – ख । ३३ - उत्थापिता-ख । ३४ - X - क ।
३५—नियमित – क । ३६ - पुजन – क । ३७ - रूप - ख । ३८ - सिन्दुर शंख सुपारि - क; नेओजल मोर - ख ।

रुक्मिणी—(संस्कृतमाश्रित्य श्लोकेन)—

किं मे ददातु गिरिजा परिवाञ्छितार्थं
किं वा हरत्वखिल-जीवहरः कृतान्तः ।
प्राणाँ, - स्तथाऽप्युभयथा भविताऽवसानं
दुःखस्य मेऽद्य सखि ! तेन हृदि प्रकर्षः ॥३१॥

सख्यौ - सान्तं पावं !! पिअसहि ! संपदं पि एरिसं विप्पिअवअणं करेसि ?
[शान्तं पापम् !! प्रियसखि ! साम्प्रतमपि ईदृशं विप्रियवचनं करोषि ?]

रुक्मिणी - सहि ! कुदो ज्जेव णिण्णीदं[३९] तए ? [सखि ! कुत एव निर्णीतं त्वया ?]

सख्यौ – जदो संणिहिदो[४०] वासुदेवो । [यतः सन्निहितो वासुदेवः ।]

(ततो मठस्थलं प्राप्य सर्वाः करचरणौ प्रक्षाल्य प्रणम्य च मठं प्रविशन्ति । ततो रुक्मिणी पुरस्त्रीणामुपदेशविधानेन श्रीगौरीमर्चयति । तत्र गीतम् —)

रुक्मिणी—(संस्कृतक अवलम्बन कय श्लोकक द्वारा)—

की त गिरिजा हमरा अभीष्ट दय देथु आ कि सभक जीवनकेँ हरनिहार यमराज हमर प्राण लय लेथु—तैयो एहि दुनू तरहेँ आइ हमर एहि दुःखक अन्त होयत । हे सखि ! ताहि सँ हमरा हृदयमे प्रसन्नता अछि ॥३१॥

दुहू सखी—अनिष्ट दूर हो !! प्रियसखी ! एखनहुँ एहि प्रकारक अधलाह वचन बजैत छी ?

रुक्मिणी—सखि ! कोना एहि तरहक निर्णय कयलहु तोँ ?

दुहू सखी – जेँ कि समीपहि मे श्रीकृष्ण छथि ।

(तखन मन्दिर लग पहुँचि सभ हाथ-पयर धोय ओ प्रणाम कय मठ मे प्रवेश करैत छथि । तखन रुक्मिणी नगरक स्त्रीगणक उपदेशक विधान सँ श्रीगौरीक पूजा करैत छथि । ततय गीत-)

[गीतसं०--५१]

जय देवि गौरि मृगेन्द्र-गामिनि !
रुचिर तनु-रुचि विजित-दामिनि
दुरित खण्डिअ दिवस - यामिनि
शम्भु कामिनि हे ॥
कइए तुअ पदकमल सेवा
निज मनोरथ सकल लेबा
सेवि दुरगत रहल के वा
मनुज[41] देवा हे ॥
गन्ध अच्छत कुसुम पानी
हमे निवेदिअ जत भवानी
लिअ सकल परिवार आनी
भगति जानी हे ॥
सदय लोचने[42] मोहि निहारिअ
तोरित आपद - गन पछारिअ[43]
अपन किंकर गनि बिचारिअ
रिपु संहारिअ[44] हे ॥

[गीतसं०—५१]

मृगेन्द्र-गामिनि = सिंह पर चलनिहारि। रुचिर = सुन्दर। तनुरुचि = देहक सौन्दर्य वा चमक सँ। विजित-दामिनि — बिजुरीकेँ जितनिहारि। दुरित = पापकेँ। यामिनि = राति। कामिनि = पत्नी ।। दुरगत = दुर्दशा मे ॥ गन्ध = चानन। कुसुम पानी = फूल ओ जल। भवानी = गौरी !। परिवार आनी = अपन परिजन केँ बजाय ॥ सदय लोचने = दयायुक्त आँखि सँ। तोरित = शीघ्र। आपदगन = विपत्तिक समूहकेँ। किंकर

४१ - मनुस - क। ४२ - लोचन - क। ४३ - सबे बिचारिअ - ख।
४४ - संचारिअ - ख।

बिसरि मने[45] अपराध अछि जत
भइए परसनि पुरिअ अभिमत
भन रमापति कए प्रणति सत
चरन अनुगत हे ॥

(इत्युपचारैः सम्पूज्य, प्रणम्य वरं प्रार्थयति संस्कृतमाश्रित्य श्लोकेन—)

प्रणम्य गिरिशप्रियां गिरिसुतां गणेशाऽन्विता
विधाय पुरतोऽञ्जलिं सपदि देवि ! याचे वरम्।
[46]विधूय दमघोषजं [47]निखिल-भूपवृन्दैः समं
प्रगृह्य करपङ्कजं भवतु मे धवो माधवः ॥३२॥

(ततः पुरस्त्रियो देव्यै सर्वं निवेद्य भूषणैस्तां प्रसादयन्ति।)

नारदः—(श्रीकृष्णनिकटं गत्वा) देवदेव ! रुक्मिण्या देवी प्रपूजिता। साम्प्रतं मठाद् बहिरागत्य गमिष्यति। तदारुह्यतां खगेन्द्र-युक्तरथः[48]।

= सेवक रूपमे गणना कय। रिपु = शत्रुकेँ ॥ परसनि = प्रसन्ना। अभिमत = अभीष्ट। सत = सैकड़ों। अनुगत = लागल ॥

(ई सभ पूजासामग्री सभ सँ पूजा कय प्रणाम कय वरदान प्रार्थना संस्कृतमे करैत छथि श्लोक द्वारा)—

गणेश-सहित महादेवक प्रिया पार्वती केँ प्रणाम कय आगू मे भटदय कल जोड़ि वरदान मङैत छी जे हे देवि ! समस्त राजाक संग दमघोषक पुत्र शिशुपालकेँ धराय केँ हमर करकमल पकड़ि माधव हमर स्वामी होथु ॥३२॥

(तखन नगरक नारीसभ देवी गिरिजाकेँ सबकिछु निवेदित कय गहना सँ हुनका प्रसन्न करैत छथि।)

नारद - (श्रीकृष्णक लग जाय) देवदेव ! रुक्मिणी गिरिजाक पूजा कयलनि। आब मठ सँ बहार आबि जयतीह। तँ चढ़ू गरुड़-युक्त रथ पर।

४५ - मम - क। ४६ - विधाय/विधूय - क / विधाय ख ॥ ४७ - ० ० ० - ख (एक चरणक अभाव)। ४८ - मत्तरथः - क प्रतिरथं - ख।

श्रीकृष्णः—(सानन्दं प्रणम्य विहङ्गराजमाहूय सम्भाष्य[49] च) पतगेश्वर[50] !
सम्प्रति मया रुक्मिण्या हरणं विधेयम् । तत्र भवता तथाऽऽचरणीयं यथा जरासन्धादयो मत्समीपं नायान्ति ।

गरुडः—(प्रणम्य) भगवन् ! पक्षपातेनैव तथा विधेयं मया ।

(श्रीकृष्णः तथा कृत्वा रथमध्ये स्थितः ।)

नारदः—बलदेव ! त्वर्यतां समराऽऽचरणाय ।

(बलदेवो यादवैः सह सज्जीभूय स्थितः ।)

(सख्यौ रुक्मिणीं करे विधृत्य बहिः कुरुतः । ततः सर्वाश्चलिताः ।)

श्रीकृष्णः - (रुक्मिणीमवलोक्य सस्मितं स्वगतम्)-

कि काञ्चनीयं लतिका विभाति
सुपुष्पिता सा विविधैः प्रसूनैः ।
किं वा तडित् सञ्चरतीह भूमौ
समन्विता चन्द्र - चकोर - चामरैः ॥३३॥

श्रीकृष्ण - (आनन्द सहित प्रणाम कय पक्षिराज गरुड़कें बजाय ओ बुझाय)
पक्षिराज ! एखन हम रुक्मिणीक हरब करब । तखन अहाँ तेना करू जेना जरासन्ध आदि हमरा लग नहि आबय ।

गरुड़ - (प्रणाम कय) भगवन् ! पाँखिक झसाते सँ तेना हम करब ।

(श्रीकृष्ण तहिना कय रथ मे बैसि रहैत छथि ।)

नारद - बलदेव ! शीघ्रता करू युद्ध करबाक लेल ।

(बलदेव यादव सभक संग तैयार भय रहैत छथि ।)

(दुइ सखी रुक्मिणीकें हाथ पकड़ि बहार करैत छथि । तखन सभ-केओ विदा होइत छथि ।)

श्रीकृष्ण —(रुक्मिणी कें देखि स्वगत)—

की ई सोनाक लत्ती अनेक फूलें फुलायल शोभित भय रहल अछि आ कि एहि पृथ्वी पर चन्द्रमा (मुख), चकोर पक्षी (आँखि) ओ चामर (केश) सँ युक्त बिजुरी चलैत अछि ? ॥३३॥

---

४९ - संभाष्य क । ५० पतगेन्द्र ग ।

अथवा,

जगद् विजेतुं [51]किमिमामनङ्गो
देवः सुरम्यां विदधे पताकाम् ।
यतस्तदस्त्रैः कुसुमैरपूर्वैः
सुचिह्निताङ्गीमवलोकयामि ॥३४॥

यत् प्राक् पत्रहारक-विप्रेण कथितं तत् सर्वं सत्यमेव । अहो विधातुः निर्माण - नैपुण्यम् ! (प्रकाशम्) देव ! आसां मध्ये का वा भीष्मसुता ? यतः,

वस्त्राऽलङ्करणैर्दिव्यैर्युक्ताश्चन्द्रनिभाननाः ।
दृश्यन्ते कन्यकाः सर्वा निर्णेतुं नैव शक्यते ॥३५॥

नारदः - (अङ्गुल्या दर्शयति, श्लोकेन च वदति)—
सैवेयं हरिणेक्षणा शशिमुखी कुन्दाभ-दन्तद्युति-
र्बन्धूकच्छवि-निन्दकाऽधररुचिः कान्त्या तडित्सन्निभा ।

अथवा,

की कामदेव संसारकें जितबाक हेतु एहि सुन्दर पताकाक रचना कयल अछि ? कियैक तँ हुनक अस्त्र अपूर्व फूलसभक चिह्न सँ युक्त अङ्गवाली हिनका (रुक्मिणीकें) देखि रहल छी ॥३४॥

जे पहिने चीठी लय गेनिहार ब्राह्मण कहलनि से सभ टा सत्ये । अहो विधाताक रचना - पटुता ! (प्रकाश) देव नारद ! एहिमे के भीष्मकक पुत्री रुक्मिणी थिकीह ? कियैक तँ,

अद्भुत बस्त्र ओ गहनासभ सँ युक्त चन्द्रमुखी सभ कन्या देखि पड़ैत छथि । अतः निर्णय नहि कयल जाय सकैछ ॥३५॥

नारद—(अङ्गुरी सँ देखबैत छथि ओ श्लोकक द्वारा बजैत छथि)-

उयेह ई हरिणसनक आँखिवाली, चन्द्रमुखी, कुन्दक फूल सनक दाँतक चमकवाली, मधुरी फूलक कान्तिकें अपन ठोर सँ निन्दित करयवाली, कान्ति

---

५१ - किमु मा - ख ।

आजच्चामर-कुन्तला कुचरुचा सौवर्णकञ्जश्रियं
निन्दन्ती करिगामिनी प्रियसखीमालम्ब्य याति स्फुटम् ॥३६॥

श्रीकृष्णः[५२]—(उच्चैः विहस्य) देव ! पश्य, पश्य कौतूहलम् । आश्चर्यम् !
सपदि नृपसुताया वीक्ष्य सौन्दर्यमस्याः
कुसुम-विशिख-बाणैः निर्दयं पीड्यमानाः ।
विवशा-हृदय-देहाः सम्भ्रमादुज्झितास्त्रा
रथ-करि - तुरगेभ्यः सम्पतन्तीह वीराः ॥३७॥

तस्मादेष एवाऽस्या हरणावसरः ।

रुक्मिणी—(जनान्तिकम्) सुदक्खिणे ! सम्पदंवि ण आअदो देओ[५३] । [सखि सुदक्षिणे ! साम्प्रतमपि नागतो देवः ।]

सख्यौ—सहि ! पेक्ख, पेक्ख, एसो उडज-[५४]वुक्ख-पासोवट्ठिओ सदल इन्दीवर-तड्डिच्छवी[५५] दीसइ । [सखि ! प्रेक्षस्व, प्रेक्षस्व, एष कुटज-वृक्ष-पार्श्वोपस्थितः सदलेन्दीवर-तडिच्छविः दृश्यते ।]

सँ बिजुरीक समान, चमकैत चामर सनक केशवाली, स्तनक सुन्दरता सँ सोनाक कमलक शोभाकेँ निन्दित करैत हाथी सनक गतिवाली रुक्मिणी प्रियसखीक आश्रय लय स्पष्ट जाय रहलि अछि ॥३६॥

श्रीकृष्ण—(जोर सँ हँसि) देव ! देखू, देखू अद्भुत बात । आश्चर्य !

एहि राजकुमारीक सुन्दरताकेँ देखि झटदय कामदेवक बाणसभ सँ निर्दयतापूर्वक पीटल जाइत, हृदय ओ देह सँ विवश, हड़बड़ाय अस्त्र त्याग कय-निहार वीर सभ रथ हाथी ओ घोड़ा पर सँ एतय खसि रहल छथि ॥३७॥

तेँ इएह हिनक हरणक समय थिक ।

रुक्मिणी—(कनकुसकी कय) सखी सुदक्षिणा ! एखनुधरि देव नहि अएलाह ।

दुहू सखी—देखू, देखू, इएह अगस्त्य-वृक्षक लग उपस्थित पात सहित नील-कमल ओ बिजुरीक समान शोभावला देखि पड़ैत छथि ।

५२—०—ख । 1—विरज—क, ख । ५३—×—ख (एहि पांतिक अभाव) ।
५४—उवण—ख; पसा सबसु सवइ सदल हिरवलतोच्छवी—क । ५५—तण्डिच-च्छवी—ख ।

(रुक्मिणी सहर्षं वामकराग्रेण कुन्तलानपसार्य विलोकयति ।)

श्रीकृष्णः—(सत्वरम्) वैनतेय ! करोतु भवान् प्रयत्नम् । मया पुनरिदानीम् अस्या नृपसुतायाः करकमलं कान्तमालम्ब्य सफलो निजावतारः क्रियते, प्रसभात् कृतार्थश्च । (इति द्रुतमुपगम्य रुक्मिणीं करे गृहीत्वा रथे संस्थापयति ।)

रुक्मिणी—हद्धी ! हद्धी !! अच्चाहिअं संवुत्तं !! । [हा धिक् ! हा धिक् !! अत्याहितं संवृत्तम् !!] (इति वेपते) ।

श्रीकृष्णः—(श्लोकेनाऽऽश्वासयति ।)

अयि वरोरु ! सरोरुह - लोचने !
भयविषादमिदं विफलं[५६] त्यज ।
न सहते तव मध्यमिह प्रिये !
स्तनभराऽतिशयं तनु - वेपनात् ॥३८॥

रुक्मिणी—(किञ्चिदाश्वस्य) अज्जउत्त ! सहीओ उण कहिं ? [आर्यपुत्र ! सख्यौ पुनः कुत्र ?]

(रुक्मिणी सहर्ष बामा हाथक अग्रभाग सँ केश हटाय देखैत छथि ।)

श्रीकृष्ण—(झटदय) गरुड़ ! करू अहाँ प्रयास । हम एखन एहि राजकुमारीक सुन्दर करकमल पकड़ि अपन अवतारकेँ सफल करैत छी ओ हठात् कृतार्थ सेहो । (झट दय लग जाय रुक्मिणीकेँ दुहू हाथ धय रथमे बैसबैत छथि ।)

रुक्मिणी—हाय ! हाय ! अनर्थ भेल !! (कँपैत छथि ।)

श्रीकृष्ण—(श्लोकक द्वारा आश्वासन दैत छथि)—

अए सुन्दर जाँघ ओ कमल सनक आँखिवाली ! एहि विफल डर ओ दुःखकेँ छोड़ । हे प्रिये ! अहाँक देहक ई मध्यभाग स्तनक भारकेँ देहक कम्पन सँ नहि सहि रहल अछि ॥३८॥

रुक्मिणी—(किछु आश्वस्त भय) आर्यपुत्र ! दुहू सखी कतय छथि ?

श्रीकृष्णः—ते[५७] अपि महर्षेस्तपोबलाद् आगमिष्यन्ति ।

(इति निष्क्रान्ताः[५८] ।)

(नेपथ्ये— 'भो भो जरासन्ध-प्रभृतयो महारथिनः शृण्वन्तु भवन्तः" ।
इति गीतेन वृत्तमावेदयति):–

[गीतसं०---५२]

रुकुमद कुमर, मगध - महिपाल ।
नृप दमघोष सहित शिशुपाल ॥
सोम, सुनीथ, कलिङ्गक - राज ।
सब मिलि राखिअ[५९] भुजबल लाज ॥
सबहु धनुर्धर भय एकठाम ।
गहिअ कमान करिअ संग्राम ॥
रुकुमिनि करे गहि रथहि चढ़ाय ।
लय गेल गोविन्द[६०] गरुड़ बढ़ाय[६१] ॥
जावहि निज मन्दिर नहि जाय ।
पथ सओ आनिअ ताहि[६२] छोड़ाय ॥
हरि पद प्रणत रमापति भान ।
सिंह नरेन्द्र महीपति जान ॥

श्रीकृष्ण—ओहो दुनू महर्षिक तपोबल सँ अओतीहि ।

(सभ बहार भय गेलाह ।)

(नेपथ्य मे—'अओ जरासन्ध आदि महारथीलोकनि ! अहाँसभ
सुनैत जाउ" । गीतक द्वारा घटनाक वर्णन करैत छथि ।)

[गीतसं० – ५२]

कमान = धनुष । संग्राम = युद्ध । निज मन्दिर = अपन घर ॥

---

५७ - तेपि - क । ५८ - निष्कान्तः - ख । ५९ - रोकिअ - क ।
६० - माधव ।

(पुन र्नेपथ्ये दुन्दुभि-ध्वनिः । जरासन्धादयस्तथाऽऽचरन्ति ।)

रुक्मी - (सकोपं) शृण्वन्तु भूपाः !

आनानीय स्वसारं स्वामहत्वा केशवं युधि ।
भवद्भिरवधातव्यं न प्रवेक्ष्यामि कुण्डिनम् ॥३८॥

(इति प्रतिज्ञाय एकरथेनैव धावति ।)

नारदः – भगवन् ! यास्यामि सम्प्रति भवद्भ्रातृ-संग्राम दर्शनाय ।

श्रीकृष्णः – देवर्षे ! सुदक्षिणा-सुशोभने प्रियायाः समीपं द्रुतं प्रापणीये ।

नारदः – ताभ्यां सहैव द्वारवतीमागमिष्ये । (इति निष्क्रम्य तयोः समीपमागतः ।)

सख्यौ[६३] – (अवलोक्य सानन्दं प्रणम्य) अज्ज ! केण उण उवाएण पिअसहीए पाणिग्गह-महूस्सवं अवलोइस्सामो ? [आर्य ! केन पुनरुपायेन प्रियसख्याः पाणिग्रह महोत्सवमवलोकयिष्यामः ?]

(फेर नेपथ्यमे बाजाक आवाज । जरासन्ध आदि तहिना करैछ ।)

रुक्मी – (क्रोध सँ) सुनैत जाउ राजालोकनि !

अपन बहिनिकेँ बिनु अनने ओ युद्ध मे कृष्णकेँ बिनु मारने
अपन कुण्डिन पुर मे प्रवेश नहि करब से अहाँलोकनि जनैत जाउ ॥३८॥

(ई प्रतिज्ञा कय केवल एक रथसँ दौड़ैत छथि ।)

नारद – भगवन् ! एखन हम अपनेक भाइक युद्ध देखय जायब ।

श्रीकृष्ण – देवर्षि ! सुदक्षिणा ओ सुशोभना केँ प्रियाक समीप झट दय पहुँचाउ ।

नारद – हुनका दुनूक संगहि हम द्वारका आयब । (निकलि ओहि दुनूक समीप पहुँचलाह ।)

दुहू सखी – (देखि आनन्दपूर्वक प्रणाम कय) आर्य ! कोन उपाय सँ प्रियसखीक विवाह-महोत्सव देखब ?

---

६१ - चढ़ाय - ख । ६२ - तबे - ख । ६३ - उभे - क, ख ।

नारदः –तपोबलाद् आक्षेपणी-विद्यया नभोमार्गेणैव तत्र प्रापयामि । तावद्
युद्धमालोकय ।

सख्यौ –भद्दं । [भद्रम् ।]

नारदः –पश्य । (गीतेन वदति) –

[गीतसं०---५३]

तोरित कुमर गेल हरि-सनिधान ।
एकहि रथे[६४] कर बड़ अभिमान ॥१॥
कतय जाह माधव ! कय चोरि ।
छाड़ि देह नृप-कुमरि मोरि ॥२॥
नहि तओ करब महा-रन[६५] घोर ।
सर परहारे हरब जिव तोर ॥३॥

सख्यौ– अच्चरिअं ! दुक्करं कधेदि भट्टिदारओ । कं वा भविस्सदि ।
[आश्चर्यम् ! दुष्करं कथयति भर्तृदारकः, किं वा भविष्यति ?]

नारदः – (विहस्य) पश्य,

हँसि काटल तसु धनुष मुरारि ।
सारथि [६६]हनल, तुरङ्गम चारि ॥४॥

नारद –तपस्याक बलसँ आक्षेपणी नामक(लोकके पलमे दूर पहुँचाबयवाली)
विद्याक द्वारा आकाशेक बाट सँ ओतय पहुँचबैत छी । तावत् युद्ध
देखू ।

दुनू सखी – बड़ दीव ।

नारद—देखू । (गीतक द्वारा कहैत छथि) -

[गीतसं०—५३]

हरि-सनिधान = कृष्णक निकट । सर परहारे = बाणक प्रहार सँ ।
जिव = जीवन ॥३॥

दुनू सखी - आश्चर्य ! दुष्कर कहैत छथि राजकुमार, की होयत की ने ?

नारद - (हँसि) देखू, मुरारि = कृष्ण । तुरङ्गम = घोड़ा ॥४॥

६४ – कय – क । ६५ – महाहव – ख । ६६ – हलसा 'क' ; हन स – 'ख' ।

सख्यौ – हद्धी ! हद्धी !! सम्पदं ण भविस्सदि । [हा धिक् ! हा धिक् !
साम्प्रतं न भविष्यति ।]

नारदः – न भेतव्यम् । पश्य, पश्य –

भइए[६७] पदाति खड्ग लय हाथ ।
गेल कुमार निकट यदुनाथ ॥५॥
सेहओ काटि पुनु [६८]हसि यदुराय ।
कुमर बान्धल रथहि लगाय ॥६॥
सुमति रमापति कह परमान ।
सिंह नरेन्द्र सकल रस जान ॥७॥

सख्यौ—(अवलोक्य) अज्ज ! अदो वड्ढइ[६९] देवस्स रहो इस्सरहीणो खगवई
दीसदि । [आर्य ! अतो वर्द्धते देवस्य रथः । ईश्वरहीनः खगपति
र्दृश्यते ।]

नारदः—स तु रुक्मिणी-सहितो द्वारवतीं सम्प्राप्तः । संप्रति बलदेवस्य संग्राम-
मवलोकय । (कञ्चित् विध्वंसिता जरासन्धादयः शिशुपाल-सहिताः
पलायिताः । किञ्चिद् दूरे स्थित्वा हृतदार-सन्निभं शोशुच्यमानं
चैद्यराजमाश्वासयन्ति । बलदेवस्य तूर्यादिघोषैः प्रहृष्टः स्वां पुरीं

दुनू सखी - हाय धिक्, हाय धिक् !! आब नहि बँचताह ।

नारद - डर जनु करी । देखू, देखू—
भइए पदाति = पएदल भय कें । खड्ग = तरुआरि । कुमार = रुक्मी ॥५॥
यदुराय = कृष्ण ॥६॥

दुनू सखी—(देखि) आर्य ! आब देवक रथ आगू बढ़ैत अछि । भगवान् कृष्ण सँ
हीन गरुड़ देखि पड़ैत छथि ।

नारद—ओ तँ रुक्मिणी सहित द्वारका पहुँचि गेलाह । एखन बलदेवक युद्ध
देखू । (किछु काल देखि आनन्दपूर्वक) देखू, देखू बलदेव आदि सँ
हराओल जरासन्ध-आदि शिशुपाल सहित पड़ायल । किछु दूर पर
ठाढ़ भय स्त्रीहरण भेल व्यक्तिक समान अतिशोक करैत चेदिराज-

६७ – पैदल शीघ्र – क । ६८ – हरि – क । ६९ – वरद – क ख ।

यादवैः सह प्रयाति । ततो भवतीभ्यां सह ममापि तत्र गत्वा बलदेवादीनां समरवृत्तान्तः श्रीकृष्ण-रुक्मिण्योः समीपे वर्णनीयः । तावन्नेत्रे निमील्य भवत्यौ तिष्ठेताम् ।

(उभे सानन्दं प्रणम्य तथा चक्रतुः । नारद आक्षेपणी-सिद्धिबलात् ताभ्यां सह द्वारवत्या उद्यानमुपगतः ।)

नारदः—अयि ; उन्मील्य लोचने । एषा द्वारवती । अत्रोपवने श्रीकृष्णस्तव सख्या सह तिष्ठति । पश्यामस्तावत् ।

(ततः सर्वे श्रीकृष्णनिकटमागताः)

रुक्मिणी—(सानन्दम्) पिअसहीओ ! कधेहि आगमणवुत्तन्तं समलस्स अ ।
[प्रियसख्यौ ! कथयतम आगमन-वृत्तान्तं समरस्य च ।]

सख्यौ—(सानन्दम्) अज्जस्स पसादेण पुणोवि पिअसही दिट्ठा । समलवुत्तन्तं उण अज्जो णिवेदइस्सदि । [आर्यस्य प्रसादेन पुनरपि प्रियसखी दृष्टा । समरवृत्तान्तं पुनरार्यो निवेदयिष्यति ।]

शिशुपाल कें सभ केओ आश्वासन दैत छैक । आ बलदेव रणवाद्यक आवाजहिं प्रसन्न भेल अपन नगरी यादव सभक संग आइत छथि । तें अहाँ दुनूक संग हमहुँ ओतय जाय बलदेव-आदिक युद्धक समाचार श्रीकृष्ण ओ रुक्मिणीक समीप मे वर्णन करब । तावत् आँखि मूनि अहाँ दुनू रहू ।

(दुनू आनन्दपूर्वक प्रणाम कय तहिना कयलनि । नारद आक्षेपणी-सिद्धिक बलें हुनका दुनूक संग द्वारकाक फुलवाड़ी मे पहुँचि गेलाह ।)

नारद – हए ! आँखि खोलह । ई द्वारवती थिक । एहि फुलवाड़ी मे श्रीकृष्ण तोहर सखीक संग छथि । देखियनु तावत् ।

(तखन सभ श्रीकृष्णक निकट पहुँचल ।)

रुक्मिणी—(आनन्दपूर्वक) हए दुनू प्रियसखी ! कहह अयबाक ओ युद्धक समाचार ।

दुनू सखी—(आनन्दपूर्वक) आर्यक कृपा सँ पुनः प्रियसखीकें देखलहुँ । युद्धक समाचार तँ आर्य सुनओताह ।

(रुक्मिणी नारदं प्रणमति ।)

नारदः—भगवन् ! श्रीकृष्ण ! जितं बलदेवेन [७०]सर्वशत्रुबलं, अन्यैरपि [७१]तावकैः ।

श्रीकृष्णः - देवर्षे ! विशेषेणाऽऽवेदय ।

नारदः - (गीतेन वर्णयति)--

[गीतसं – ५४]

-आ रे ॥ध्रु०॥

श्रीबलदेव जरासन्ध[७२] जीतल, दन्तवदन अकरूरे ।
विपृथु गवेषने[७३] जीति पड़ाओल, चेदिनृपतिवर शूरे ॥
चक्रदेवे रन जितल विदूरथ, निधृत शत्रु कालिङ्गा ।
कृतवर्मान्नो सुनीथहि जीतल, कङ्क जितल नृप अङ्गा ॥
चित्रके सत्यक जीतल रिपुबल, बहुत कयल रन काजा ।
पुनु मुसलायुध जीत द्रुमासुर, मारल बङ्गक राजा ॥
बहुत मतङ्ग तुरङ्ग[७४]कबन्धहि, रङ्गभूमि भेल भीमा ।
अगनित वीर सरीर खसल जत, कोने कहब तसु सीमा ।

(रुक्मिणी नारदकें प्रणाम करैत छथि ।)

नारद – भगवान श्रीकृष्ण ! बलदेव सकल शत्रसेना कें जितलनि ओ अहाँक आनो महारथीलोकनि विजयी भेलाह ।

श्रीकृष्ण – देवर्षि ! विशेषरूपें कहू ।

नारद – (गीतक द्वारा वर्णन करैत छथि)--

गीतसं० – ५४

दन्तवदन अकरूरे = दन्तवक्त्र नामक दैत्यकें यादव अक्रूर जितल । विपृथु = एहि नामक यादव । गवेषने = ताकि कें । चेदिनृपतिवर = शिशुपालकें । पड़ाओल = बैलाओल । विदूरथ = एहि नामक कलिङ्गक (उड़ीसाक) राजाकें । निधृत = घेरल । नृप अङ्गा = अङ्गदेशक राजाकें ।

---

७० - ० - ख । ७१ - ० - क । ७२ - जरासुत - क । ७३ - विलय गवेषेने - ख । ७४ - अङ्ग अति - ख ।

समरभूमि जे तेजि पड़ायल, राखल[७५] सएह पराने ।
यादव-गन सभ अक्षत आएल, सुमति रमापति भाने ॥

श्रीकृष्णः—सम्यग्वृत्तम् । आर्य ! किमाश्चर्यम् ? मुने ! त्वयापि भद्रमालोकितं वर्णितं च ।

(ततः प्रविशति यादवैः सह बलदेवः)

बलदेवः—श्रीकृष्ण ! साम्प्रतं कथं विश्रम्यते ? किन्तु स्वभवनं प्रविश्य द्रुतमेव परिणयो विधेयः ।

(श्रीकृष्णः बलदेवं प्रणम्य समाश्लिष्य च अन्येषामपि यथोचितमाचरति ।)

श्रीकृष्णः—आर्य ! दिष्ट्या क्षेमेण भवत्सहाया यादवा अक्षताः पुनरायातास्ते च समरपरिश्रान्ताः सन्ति । ततो मनाग् विश्रम्यताम् ।

चित्रके सत्यक = चित्रकके सत्यक नामक यादव। मुसलायुध = बलदेव । मतङ्ग-तुरङ्ग कबन्धहि = हाथी ओ घोड़ाक कटल मूड़ी सभ सँ । रङ्गभूमि – युद्ध-क्षेत्र । भीमा = भयानक । अक्षत = कुशलपूर्वक ॥

श्रीकृष्ण—ठीके भेल । आर्य ! (रुक्मिणी !) की आश्चर्य ? मुनिवर ! अहूँ नीक जकाँ देखलहुँ ओ वर्णित कयलहुँ ।

(तखन यादवसभक संग बलदेव प्रवेश करैत छथि ।)

बलदेव—श्रीकृष्ण ! आब एखन कियैक रुकल छी ? आब सँ अपन घर प्रवेश कय शीघ्रे विवाह करू ।

(श्रीकृष्ण बलदेवके प्रणाम ओ आलिङ्गन कय आनो सभक यथोचित सत्कार करैत छथि ।)

श्रीकृष्ण—आर्य ! भाग्यवशात् कुशल पूर्वक अहाँक सहायक यादवलोकनि सुरक्षित फेर अयलाह, ओसभ युद्धक कारण थाकल छथि । अतः कनेक विश्राम करैत जाउ ।

---

७४ - बांचल - ख ।

बलदेवः—(उपविश्य) देवर्षे ! त्वमग्रे गत्वा नृपायोग्रसेनाय ताताय च निवेदय । देवक्यादयश्चाऽम्बा विनिवेद्याः, कुर्वन्तु सकल-माङ्गलिकमिति ।

नारदः—(पुरं प्रविश्य तत्र श्लोकेन सहर्षमावेदयति)—

आयातो हरिरच्युतः स्वनगरं[७६] रामादिभिर्बन्धुभी-
रुक्मिण्या च समन्वितो रिपुबलं जित्वा सहर्षं ततः ।
कुर्वन्तु प्रतिमन्दिरं यदुकुले नार्यः परं मङ्गलं
वादित्र ध्वनि गीत-नर्त्तन-युतं गृह्णन्तु भूषावलीः[७७] ॥४०॥

(सर्वाः समाकर्ण्य सानन्दं तथाऽऽचरन्ति । उग्रसेनः श्रुत्वा सानन्दं सम्पूज्य तेनाऽनुज्ञातः श्रीकृष्णस्य पुरो गत्वा यथोचितमाभाष्य च पुरं प्रवेशयति । तदा पुरस्त्रियो गायन्ति विहागरागे)

[गीतसं०—५५]

सजनी ! परम सुमङ्गल आज ।
रुकुमिनि देवि सहित पुनु आएल निजमन्दिर यदुराज[७८] ॥ध्रु०॥

बलदेव—(बैसि) देवर्षि ! अहाँ आगू जाय राजा उग्रसेनके ओ पिताजीके कहि अबियनु । देवकी-आदि मायलोकनिके सेहो कहबनि जे सभ मंगल-काज करथु ।

नारद—(नगर प्रवेश कय, ओतय श्लोकद्वारा सहर्ष कहैत छथि)—

बलराम-आदि बन्धुक ओ रुक्मिणीक संग श्रीकृष्ण शत्रुसेनाकेँ जीति सहर्ष अपन नगर आबि गेलाह । अतएव नारीलोकनि यदुकुलक प्रत्येक घर मे बाजाक शब्द, गीत, नाच आदि सँ युक्त महान् मङ्गल करैत जाथु ओ गहनासभ पहिरथु ॥४०॥

(सभ क्यो सुनि आनन्द सँ तेना करैत छथि । उग्रसेन सुनि आनन्द पूर्वक हुनक पूजा कय हुनका सँ आज्ञा पाबि श्रीकृष्णक आगू जाय यथोचित कहि नगर प्रवेश करबैत छथि । तखन नगरक स्त्रीगण गबैत छथि विहागराग मे)—

[गीतसं०—५५]

निजमन्दिर = अपन घर । यदुराज = कृष्ण । मलयजरस = श्रीखण्डक

७६—समगरं—क । ७७—बलीम - क । ७८ - यदुराज - ख ।

मलयज रस लय भवन विलेपिअ, साजिअ वन्दनेवार ।
[७९]अनुपम ऐपन रचिअ मनोरम, घरें घरें दीअ हेंकार ।
एला-बीज लवंग सुवासित, खदिर सहित घनसार ।
जातीफल दय विविध भाँति कय, करिअ तमोर [८०]सँभार ॥
कञ्चन-कलश सलिलें परिपूरिअ, दइए सुगन्धि अनेक ।
तसु मुख धरिअ रसालक किसलय, हरष करिअ अतिरेक ॥
मञ्जुल समय उचित सबे सखि मिलि, गाबिअ सुललित राग[८१] ।
विहि परसन भेल, हरि दरसन देल, बाढ़ल यदुकुल भाग ।
देवकि रोहिनि सहित कलस कर, आनन्द यादव-नारि ।
गाब रमापति, अति प्रमुदित मनि, अभिमत पुरथु मुरारि ॥

नारदः—(प्रविश्य) भगवन् ! वसुदेव ! भगवति देवकि ! रोहिणि ! शुभलग्न-मतिक्रामति । तस्मात् परिणयतु श्रीकृष्णो रुक्मिणीम् ।

(ततो नारदवाक्यानुसारेण श्रीकृष्णो रुक्मिणीं परिणयति । पुनरपि ता गायन्ति):—

हँसल चानन सँ । वन्दनेवार = मेहराब । एलाबीज = इलायचीक बीया । सुवासित = सुगन्धित । खदिर = खायर कथ । घनसार = कपूर । जातीफल = जायफर । तमोर सँभार = पानक व्यवस्था । कञ्चन-कलस = सोनाक घट । सलिलें = जल सँ । तसु = ओहि घैलक मुँह पर । रसालक किसलय = आमक पल्लव । अतिरेक = अतिशय । विहि = विधाता । रोहिनि = बलदेवक माय । कलस कर = हाथ मे भरल घैल ।

नारद—(प्रवेश कय) भगवान् वासुदेव ! भगवती देवकी ! रोहिणी ! शुभ लग्न बितल जाय रहल अछि। तें श्रीकृष्ण रुक्मिणी सँ विवाह करथु।

(तखन नारदक वचनक अनुसार श्रीकृष्ण रुक्मिणीसँ विवाह करैत छथि । पुनः स्त्रीगण गीत गबैत छथि)—

---

७९ - ० - क (एहि पाँतीक अभाव)। ८० - अभार - क। ८१ - ० - ख।

[गीत सं० - ५६]

अति सुदिवस भेल आजे ।
रुकुमिनि - पाणि गहथि बृजराजे ॥
जनम सफल मोहि भेला ।
विहि भेल समुल नयन सुख लेला ॥
दुहुक वदन सानन्दा ।
जनि कैरव मिल सारद चन्दा ॥
मने होअ गिरिश—भवानी ।
कीदहुँ कमला - सारङ्गपानी ॥
दुहुक विलोच लाजे ।
मन अभिलाष वदन - रुचि छाजे ।
सुमति रमापति भाने ।
सिंह नरेन्द्र महीपति जाने ॥

(ततो वैवाहिकं कर्म परिसमाप्य श्रीकृष्णो रुक्मिण्या सह समुपविशति ।)

नारदः—(दूर्वाक्षताभ्यां शुभाशिषो ददाति । तत्र श्लोकः)—

[गीतसं० - ५६]

रुकुमिनि-पाणि = रुक्मिणीक हाथ । विहि = विधाता । समुल = अनुकूल । कैरव = कुमुदिनीक फूल । सारद = शरद् ऋतुक । मने होअ गिरिश-भवानी = मन मे लगैछ जेना शंकर ओ पार्वती रहथि । कमला सारंगपानी = लक्ष्मी ओ विष्णु । विलोचन = आँखि मे । वदन-रुचि = मुहक चमक ।

(तखन विवाह विधि समाप्त कय श्रीकृष्ण रुक्मिणीक संग बैसैत छथि ।)

नारद—(दूबि ओ अक्षत सँ शुभाशीर्वाद दैत छथिन । ताहि मे श्लोक) -
जेना गिरिजाक संग श्रीशङ्कर, लक्ष्मीक संग विष्णु ओ शचीक संग

श्रीशङ्करो गिरिजया रमया मुकुन्दः
शच्या यथा सुरपतिः सहितो विभाति ।
सार्द्धं तथा रुक्मिनया विहराऽत्र भूमौ
भूत्वा चिरायुरखिलाऽभिमताऽस्तु[82] सिद्धिः ॥४१॥

(ततो देवक्यादयो नीराजयन्ति । तत्र गीतं गौरी-मालव-विहाग-रागेण)—

[गीतसं०---५७]

साजनि ! विरचिअ मङ्गल साजे ।
रुकुमिनि देवि सहित यदुनन्दन, हरषि चुमाविअ आजे ॥ध्रु०॥
तण्डुल दूबि[83] रुचिर कदलीफल, मलयज पङ्क विसाले ।
विचकिल[84] कुन्द, अरुन अरविन्दहि, गाँथिअ अनुपम माले ॥
फल दधि कुसुम निकरैं परिपूरिअ, सुललित डल्लक हाथे ।
विविध शुभाशिष दइए चुमविअ, सब मिलि माधव-माथे ॥
गुग्गुल अगर विसाल सालरस आनिअ धूप समीपे ।
सानन्द मानस भए पुनु नेओछिअ, तसु सिर मनिमय दीपे ॥

इन्द्र शोभित होइत छथि तहिना अहाँ हिनका संग एहि पृथ्वी पर दीर्घायु भय विहार करू । अहाँक सभ अभीष्टक सिद्धि हो ॥४१॥

(तखन देवकी आदि आरती करैत छथि । ताहि ठाम गीत गौरी-मालवविहाग रागक द्वारा) -

[गीतसं० - ५७]

चुमाविअ = चुमाओन कराउ । तण्डुल = अच्छत । रुचिर = सुन्दर । कदली = केरा । मलयज-पङ्क = श्रीखण्ड घँसल । विचकिल = बेली-फूल । अरुन अरविन्दहि - लाल कमल सँ । अनुपम - जकर उपमा नहि हो, अपूर्व । निकरैं = समूह सँ । सुललित डल्लक =

---

[82] - रस्तुसिद्धि - ख । [83] - दुबि - ख । [84] - किल - क ।

दय करताल ताल बुझि[85] हरिगुन, करिअ मनोहर गाने ।
सिंह नरेन्द्र-महीपति बूझथि, सुमति रमापति भाने ॥
(अत्राऽपि [86]"हे सखि ! कहब कओने विशेषि" इति गीतम् सं०-३८ उपयोगीति ।)

(तत उत्थाय श्रीकृष्णस्तया सह कौतुकागारं प्रयाति । तत्र गीतम्)—

[गीतसं० – ५८]

कौतुक-भवन चलल वनमाली ।
सिन्दुर धार देअ तसु आली ॥
करपङ्कज गहि राजकुमारी ।
लघु लघु युगल चरन सञ्चारी ॥
बाँकि[87] विलोचने बिहुसि निहारी ।
सबहुक मानस हरषि मुरारी ॥
सामर तनु आनन सानन्दा ।
जलद उपर समुदित जनि चन्दा ॥

सुन्दर डाला । माधव-माथे = कृष्णक माथ पर । साल-रस = सररक सत्त्व । सानन्द मानस = आनन्दित मन । करताल = थपरी ।

(एहू ठाम "हे सखि ! कहब ......" गीतसं ३८ उपयोगी अछि ।)

(तखन उठि श्रीकृष्ण रुक्मिणीक संग कोबरा घर जाइत छथि । ताहि-ठाम गीत)--

[गीतसं० - ५८]

वनमाली = कृष्ण । आली = सखी । करपङ्कज = करकमल । लघु लघु युगल चरण = छोट डेगेँ दुनू पयर बढ़बैत छथि । बाँकि = तिरछी । विलोचने = नजरि सँ । मानस = मनकेँ । सामर तनु = श्यामल देह । आनन = मुँह । जलद = मेघ । समुदित = उगल । अनुपम = अपूर्व । मन-

---

[85] - बूझि ख । [86] - ० ० - क (एहि पाँतीक अभाव) ।
[87] - बाँक विलोचन - क ।

अनुपम रूप निरखि हरि[८८] देहा ।
ते॓ जनि[८९] मनसिज भेल विदेहा ॥
हरिपद प्रनत रमापति भाने ।
सिंह नरेन्द्र महीपति जाने ॥

(ततः कौतुकागारं प्रविश्य रुक्मिण्या सहोपविशति । तत्र गीतं पहरिआ-मालवरागे -)

[गीतसं०---५९]

अपरुब कौतुक देखिअ आजे ।
अभिनव नागर रमनि समाजे ॥
जतनहु समुख बदन नहि राखे ।
उकुतिहि बुझिअ परम अभिलाषे ॥
अनुपम उपचित दुहुक सिनेहे ।
थिर भए दामिनि मिलु जनि मेहे ॥
किदहुँ चकोर रमनि मिलु चन्दा ।
कीदहुँ अलि कमलिनि - मकरन्दा ॥
कीदहु॓ रति पुनु पाओल सङ्गे ।
विधिवस तनु धरि मिलल अनङ्गे ॥

सिज = कामदेव । विदेहा = देहहीन ॥

(तखन कोबरा घर प्रवेश कय रुक्मिणीक संग बैसैत छथि । तत्य गीत पहड़िया-मालव राग मे)—

[गीतसं० - ५९]

कौतुक – लीला । अभिनव – नवीन चतुर नायक । रमनि समाजे – सुन्दरीक संग छथि । जतनहु – यत्नो कयला पर । समुख – सोझाँ । उकुतिहि – बचने सँ । उपचित – बढ़ल । दामिनि – बिजुरी । मेहे – मेघक संग । किदहुँ – अरिसक । चकोर रमनि – चकोर पक्षीरूपी सुन्दरी । अलि – भौँरा । कमलिनि-मकरन्दा –

भने गुनि सुमति रमापति गावे ।
पुरुब पुने॓ दुहु समुचित पावे ॥

(सख्यौ सप्रश्रयं गायतः -)

[गीतसं०---६०]

माधव ! सुनिअ निवेदन वानी ।
सुमुखि मिलल तोहि गुनमय जानी ॥
ते॓ परि पेम परब सखि ठामे ।
दिने दिने होअ अधिक अभिरामे ॥
यतने मेटाए उपल-पट - रेहे ।
न छुट जनम भरि सुजन सिनेहे ॥
जइअओ घरष पुनु पुनु दय नीरे ।
अविरल परिमल देथि पटीरे ॥
तेजि भुजग बिष, मलय समीरे ।
गुन गहि सीतल करथि सरीरे ॥
हरसिर बास, जनक जसु सिन्धु ।
सेहओ सुधाकर कैरव - बन्धु[९०] ॥

कमलिनीक पराग सँ । रति – कामदेवक स्त्री । विधिवस संयोग सँ । तनु – देह । अनङ्ग – कामदेव । पुरुब पुने॓ – पूर्वक पुण्य सँ ॥

(दूनू सखी स्नेहपूर्वक गबैत छथि) -

[गीतसं० - ६०]

ते॓ परि = तेँ । पेम = प्रेम । सखि ठामे = सखी पर । अभिरामे = सुन्दर । यतने = यत्न कयला पर । उपल-पट-रेहे = पाथरक तल पर जे रेखा से । घरष = घँसल जाइछ । नीरे = पानि । अविरल = लगातार । परिमल = सुगन्धि । पटीरे = श्रीखण्ड । भुजग = सापक । मलय समीरे = मलयाचलक दछिनाही बसात । हर सिर = महादेवक

सुरगने मथि सम्पति लुटि लेल ।
तइअओ जलधि उछलित नहि भेल ॥
सुमति रमापति भन परमान ।
न थिक परसमनि सुजन—समान ॥

(श्रीकृष्णः सलज्जं नारदमवलोकयति ।)

नारद.—एवमेतत् । किन्तु, (श्लोकेन)—

सद्वंशजा शशिमुखी विदुषी सखी ते
भूपालवर्गमपहाय हरौ प्रलीना ।
प्रेमाऽऽकुलेन मनसा परिणीय चेत्थं
किं वा वशीकरणमस्ति ततोऽधिकं च ॥४२॥

तेन सर्वथा त्वत्सख्या स्वगुणै देवः क्रीतो वासुदेवः, विशेषतस्तु सम्प्रति भवत्योरनुनय-वचनाऽमृतेन ।

सखी[९१]—अज्ज ! जइ देव्वो सीकरेदि । [आर्य ! यदि देवः स्वीकरोति ।]

मथि पर । जनक जसु सिन्धु = जनिक पिता समुद्र छथि । सुधाकर = चन्द्रमा । कैरव-बन्धु = कुमुदफूलक मित्र । सुरगने = देवता सभ । जलधि = समुद्र । उछलित नहि = मर्यादाक उल्लंघन नहि कयल । परसमनि = स्पर्शमणि ॥

(श्रीकृष्ण लज्जायुक्त भेल, नारद कें देखैत छथि ।)

नारद—ई एहिना छैक । मुदा, (श्लोकक द्वारा)—

उत्तम वंश मे जनमलि अहाँ लोकनिक ई बुधियारि सखी सभ राजाकें छोड़ि श्रीकृष्णमे तन्मय भय गेलीहि । प्रेमसँ ओतप्रोत मनें एहिप्रकार विवाह कय हुनक ई वशीकरणे की, ओहू सँ अधिक थिक ॥४२॥

तें सभ तरहें अहाँ। सखी अपन गुण सँ कृष्णकें मोल लय लेलनि, विशेष कय अहाँ दुनूक विनय-वचनरूपी अमृत सँ ।

दुनू सखी—आर्य ! जँ देव स्वीकार करथि ।

---

९१ - उभे - क ख ।

श्रीकृष्णः—यदाह देवर्षि नारदः ।

नारदः[९२]—सम्प्रति गम्यते मया निर्जन-प्रदेशो[९३]जपाचरणाय ।

(श्रीकृष्ण उत्थाय तमनुनेतुं निष्क्रान्तः । यदुस्त्रियोऽपि निष्क्रान्ताः)

रुक्मिणी—(सोद्वेगम्) सही ! अम्हाणं भादुणो विमोक्खणं कहा भविस्सदि ? मए उण एदेण महूसवेण विसुमरिदं । [सख्यौ ! अस्माकं भ्रातु विमोक्षणं कथं भविष्यति ? मया पुनरेतेन महोत्सवेन विस्मृतम् ।]

सख्यौ—सहि ! अज्ज रअणीए तए माणो गहीदव्वो । तदो ज्जेव तस्स मोक्खो झत्ति भविस्सदि । [सखि! अद्य रजन्यां त्वया मानो ग्रहीतव्यः । ततोऽचैव तस्य मोक्षो झटिति भविष्यति ।]

रुक्मिणी—तत्थ वि को उण उवाओ ? [तथापि कः पुनरुपायः ?]

(उभे सर्वं शिक्षयतः)

श्रीकृष्णः—(प्रविश्य) कथमचिरेणैव सोद्वेगा प्रिया ? (पुरः स्थित्वा) प्रिये ! सम्प्रति सर्वे निर्गताः । ततः किमिति नाऽऽभाषयसि माम् ?

श्रीकृष्ण—जे कहलनि देवर्षि नारद सएह ।

नारद—आब एखन हम निर्जन स्थान मे जप करबा लेल जाइत छी ।

(श्रीकृष्ण ऊठि हुनका अरियातबाक हेतु बहार भेलाह । यादवस्त्री सभ सेहो गेलीहि ।)

रुक्मिणी—(उद्विग्न होइत) सखी ! अपनालोकनिक भाइक बन्धन-मुक्ति कोना होयत ? ई तँ हम एहि महोत्सव सँ बिसरि गेलि छलहुँ ।

दुनू सखी—सखी आइ राति अहाँ मान करब । ताहि सँ आइये हुनक (रुक्मीक) बन्धन सँ छुटकारा झटदय होयत ।

रुक्मिणी—ताहूमे कोन उपाय अछि ?

(दुनू सखी सभ टा सिखबैत छथि ।)

श्रीकृष्ण—(प्रवेश कय)कियैक थोड़बे कालमे प्रिया उद्विग्न भय गेलीहि?(आगू मे ठाढ़ भय) प्रिये ! सम्प्रति सभ बहार गेल । तखन कियैक एना हमरा सँ नहि बजैत छी ?

---

९२ - ० - क । ९३ - जपा - ख ।

रुक्मिणी—(विमुखीभूय मुखमवगुण्ठ्य तिष्ठति ।)

श्रीकृष्णः—(करे ग्रहीतुमिच्छति ।)

रुक्मिणी—(सकोपं करमाकृष्य दीर्घं निःश्वस्य मुखमाच्छाद्य रोदिति ।)

श्रीकृष्णः—(पुनरग्रतः स्थित्वा बद्धाञ्जलिः) प्रिये ! प्रसीद मानिनि ! सम्प्रति प्रभातशेषेव रजनी लक्ष्यते । तथाहि (गीतेन)—

[गीतसं०—६१]

गिरिवर-लीन मलीन निसाकर, अलप नखत नहि भासे ।
मुदित कमलबनि किए नहि तुअ धनि, नयन सरोज विकासे ॥१॥
ओ गे मानिनि ! ॥ध्रु०॥

(अत्रार्थे श्लोकः)—

अस्ताचलं याति शशी गतच्छवि-
र्लसन्ति नेवाऽल्पतराश्च तारकाः ।
सरोज-राजी प्रविभाति सर्वतः
तथापि ते नेत्र-सरोज-मुद्रणम् ॥४३॥

रुक्मिणी—(विमुख भय मुँह पर घोघ तानि रहैत छथि ।)

श्रीकृष्ण—(हाथ पकड़य चाहैत छथि ।)

रुक्मिणी - (क्रोध सहित हाथ घीचि दीर्घ निःश्वास लय मुँह झाँपि कनैत छथि ।)

श्रीकृष्ण - (पुनः आगूमे ठाढ़ भय कर जोड़ि) प्रिये ! प्रसन्न होउ मानिनि ! सम्प्रति भोरुक्वा राति जकाँ बुझाइछ । जेना कि (गीतक द्वारा) -

[गीत सं० —६१]

गिरिवर लीन = अस्ताचल पर्वत मे डूबल जाइत । मलीन निसाकर = प्रकाशहीन चन्द्रमा । अलप = थोड़बो । नखत = तरेगन । मुदित = प्रसन्न नयन-सरोज = आँखि रूपी कमल । विकासे = फुलैत अछि ॥१॥

(एहि अर्थमे श्लोक) - चन्द्रमा श्रीहीन भय अस्ताचल पर जाइत छथि ओ तरेगन कनियों नहि शोभित होइछ । कमलक समूह सगठाम शोभित भय रहल अछि, तैयो अहाँक आँखि रूपी कमल मुनयले अछि ॥४३॥

सुरपति-दिश अनुराग देखिअ धनि तइअओ ने तोहि अनुरागे ।
तुअ मानस परसन नहि सुन्दरि, अम्बर परसन लागे ॥२॥

(अत्रार्थे श्लोकः)—

अनुरागोऽभवत् प्राच्यां नाऽनुरागस्त्वयि प्रिये !
प्रसन्नमम्बरं वीक्ष्य न प्रसीदति ते मनः ॥४४॥

तुअ मुख मौन विचारि कलावति ! पिक पञ्चम कर नादे ।
पिञ्जर कीर धीर मृदु भाषय, तञ होअ परम विषादे[९४] ॥३॥

(अत्रार्थे श्लोकः)—

मौनं सन्त्यज[९५] कञ्जाक्षि ! मानं मुञ्च न[९६] मुञ्च वा ।
पिकाः शुकाश्च सुश्रोणि ! मूकारितष्ठन्तु साम्प्रतम् ॥४५॥

इन्दु मृणाल अमिअ सरसीरुहे, तुअ तन[९७] कय निरमाने ।
मानस कुलिस वलिश विहि विरचल, तहिन होअ अनुमाने ॥४॥

सुरपति दिश = पूब दिशा । अनुराग = लाली । अनुरागे = प्रेम। मानस = मन । परसन = प्रसन्न । अम्बर = आकाश ॥२॥

(एहि अर्थमे श्लोक)- पूब दिशामे अनुराग (लाली) भय गेल, मुदा, हे प्रिये ! अहाँक हृदयमे अनुराग (स्नेह) नहि भेल । प्रसन्न (रमणीय) आकाशकेँ देखि अहाँक मन प्रसन्न नहि होइछ ॥४४॥

मौन = चुप । पिक = कोइली । पञ्चम = पञ्चम स्वर मे । नादे = आवाज । पिञ्जर कीर = पिजड़ा मे सुग्गा । धीर मृदु भाषय = स्थिर ओ कोमल स्वरेँ बजैछ । विषादे = तकलीफ ॥३॥

(एहि अर्थमे श्लोक) -

हे कमल सनक आँखिवाली ! अहाँ मानकेँ छोड़ू वा नहि छोड़, मुदा, चुप्पी छोड़ि दिय । हे सुन्दर जाँघवाली! अहाँक बजला पर एखन कोइली ओ सुग्गा चुप भय जाओ ॥४५॥

---

९४ - विषादे = ख ।

(अत्रार्थे श्लोकः)—

चन्द्रेणाऽऽस्यं विधाय प्रथममथमृणालद्वयेनैव बाहू
नेत्रे रक्ताऽम्बुजाभ्यामधर-विरचना बन्धुजीवप्रसूनैः ।
सृष्ट्वा[98] पीयूषसारैर्वचनमिह विधिर्मानसं किन्त्वकस्माद्[99]
वज्रेणाऽकारि कस्माद् बलिशमिव परं [100]वकमेतन्न जाने ॥४६॥

विसरिअ दोस, रोस सबे[1] दूरि कए, बचन अमिअ रुह दाने ।
निसि अवसान मान नहि राखिअ, सुमति रमापति भाने ॥५॥
अपि च,

[गीतसं०---६२]

तुअ मुख अवनत देखि, मानिनि !
पङ्कज विकस विसेषि ॥
हेरि बिलोचन आध, मानिनि !
कहिअ हमर अपराध ॥

इन्दु = चन्द्रमा । मृणाल = कमलक नाल । अमिअ अमृत । सरसीरुहे = कमल, एहि सभ सँ । तुअ तन = अहाँक देहक । निरमाने = रचना ॥ मानस = मन । कुलिस बलिश = बज्र ओ बर्छी सनक । बिहि = विधाता । तहिन = तेहन ॥४॥

(एहि अर्थ मे श्लोक) -

विधाता पहिने चन्द्रमा सँ अहाँक मुँह गढ़ि, दुइ कमलनाल सँ बाँहि, दुइ लाल कमल सँ आँखि, माधुरीक फूल सँ ठोर ओ अमृतक रस सँ वचनक सृष्टि कयलनि, मुदा, एकाएक कोना बज्र सँ बर्छी जकाँ टेढ़ ई अहाँक मन केँ बनओलनि से नहि जानि ॥४६॥

दोस = दोष । रोस = रोष, क्रोध । अमिअ = अमृत । निसि अवसान = रातुक अन्त मे ॥५॥

आओरो -

[गीतसं० - ६२]

अवनत = झुकल । पङ्कज = कमल । बिकस विसेषि = विशेष रूपे

९८ - सृष्टा - ख । ९९ – किन्तु कस्माद् - ख । १०० - रक्त – क । १ - सब - क ।

न तेजिअ बिधुमुखि ! नोर, मानिनि !
आकुल नयन चकोर ॥
आनन इन्दु समान, मानिनि !
कज्जलें होअ मलान ॥
परिहरि दीघ निसास, मानिनि !
न रहए अधरक भास ॥
सुमति रमापति भान, मानिनि !
मिथिला - पति रस जान ॥

रुक्मिणी—(अश्रु निवार्य कटाक्षेणाऽवलोकयति ।)

श्रीकृष्णः—(सहर्षम्) प्रिये ! त्वयि यादृशो मम स्नेहोऽस्ति तदव्याकर्णय । (पुन गीतेन):—

[गीतसं०--६३]

तोहें हम अहिन सिनेह, प्रेयसि ! ॥ध्रु०॥
(इत्यादि[2]) ।

फुलाइत अछि । हेरि = ताकि । बिलोचन आध = आधा दृष्टि सँ । तेजिअ = छोड़ू । बिधुमुखि = चन्द्रमुखी । नयन-चकोर = हमर आँखि-रूपी चकोर पक्षी । आनन = मुँह । इन्दु = चन्द्रमाक । कज्जलें = काजर सँ । परिहरि = छोड़ि । दीघ = पैघ । अधरक भास = ठोरक शोभा ॥

रुक्मिणी —(नोर रोकि कटाक्ष सँ देखैत छथि ।)

श्रीकृष्ण —(सहर्ष) प्रिये ! अहाँ पर हमरा जेहन स्नेह अछि सेहो सुनू । (पुनः गीतसँ):—

[गीतसं० – ६३]

तोहें हम = अहाँकेँ हम जेहन स्नेह करैत छी । पेअसि = प्रिये !

२ - इत्यादि - क ख (दुहू पोथी मे गीत अपूर्ण अछि ।)

रुक्मिणी—(सानन्दं विहस्याऽवलोक्य च सखीं सम्बोध्य वदति) सहीओ ! विण्णावेहि अज्जउत्तं, जइ सच्चं एदं तदो अम्हाणं भादुणो विमोक्खणं[3] दाणि ज्जेव करेदु । [सख्यौ ! विज्ञापयतम् आर्यपुत्रं, यदि सत्यमेतत् ततोऽस्माकं भ्रातु विमोक्षणमिदानीमेव करोतु ।]

सख्यौ—(श्रीकृष्णं निवेदयतः ।)

श्रीकृष्णः—कथमेतावत्येव कार्ये एवम्प्रयासः ?

सख्यौ—जदो स्स गरुओ पुव्वावराहो तदो अण्णहा[4]-सङ्कि पिअसहीए हिअअं । [यतोऽस्य गुरुकः पूर्वापराधः ततोऽन्यथाशङ्कि प्रियसख्या हृदयम् ।]

श्रीकृष्णः—तर्हि युक्तमेव । कः कोऽत्र भोः !

किङ्करः (प्रविश्य, प्रणम्य च) एसोम्हि । आणवेदु सामी । [एषोऽस्मि । आज्ञापयतु स्वामी ।]

श्रीकृष्णः—विमोच्य श्मश्रु-वपनेन विरूपं विधाय च समानीयतां रुक्मी ।

(किङ्करो निष्क्रम्य तथा कृत्वा तेन सहागतः ।)

(ततः प्रविशति बलदेव)

रुक्मिणी - (आनन्द पूर्वक हँसि ओ देखि सखीकेँ सम्बोधित कय बजैत छथि) दुहू सखी ! कहियनु आर्यपुत्र केँ, जँ ई सत्य तँ हमरालोकनिक भायकेँ एखन बन्धनमुक्त करथु ।

दुनू सखी - (श्रीकृष्णकेँ कहैत छथि ।)

श्रीकृष्ण - की एतबे काजक विषय मे एहन आयास भेल अछि ?

दुनू सखी - जेँ कि हुनक पैघ पूर्वक अपराध छनि तेँ प्रियसखीक हृदय आनतरहए शंका मे छल ।

श्रीकृष्ण - तखन तँ ठीके भेल। क्यो एतय अछि ?

नोकर—(प्रवेश कय ओ प्रणाम कय) इयैह छी, आज्ञा देल जाओ सरकार ।

श्रीकृष्ण - रुक्मीकेँ खोलि ओ दाढ़ी काटि विरूप बनाय लाबहु ।

(नोकर बाहर जाय, तहिना कय रुक्मीक संग अबैत अछि ।)

(तखन बलदेव प्रवेश करैत छथि ।)

बलदेवः[5]—अतः परमसौ न विरूपणीयः ।

किङ्करः[6]—(तथा करोति ।)

बलदेवः—(रुक्मिणीं प्रति) कल्याणि ! भ्रातु र्वैरूप्यहेतोस्त्वया मन्यु र्न कार्यः । यतोऽस्माकं क्षत्रियाणां विग्रहे सति सर्वं भवत्येव, किन्तु *वधार्होऽप्ययं तवाऽनुग्रहादेव श्रीकृष्णेन रक्षितो मोचितश्च ।

(रुक्मिणी सानन्दं सखीमवलोकयति ।)

सुदक्षिणा—जहा अज्जेण आणत्तं तहा करिस्सदि पिअसही । [यथा आर्येण आज्ञप्तं तथा करिष्यति प्रियसखी ।]

नारदः—(प्रविश्य, रुक्मिणमवलोक्य परिहासादिकं विधाय) गच्छतु भवान् ।

(इति तैरनुज्ञातो रुक्मी निष्क्रान्तः, प्रतिज्ञावचनं संस्मृत्य लज्जया भोजकट-नगरे निवासमकरोत् ।)

नारदः—भगवन् ! अनुजानीहि मां ब्रह्मसदन-गमनाय । किं वा भूयस्तव प्रियं मया सम्पादनीयम् ?

बलदेव - एहि सँ बेसी विरूप हिनका नहि बनाबहु ।

(नोकर तहिना करैछ ।)

बलदेव—(रुक्मिणीक प्रति) भाग्यशालिनि ! भाइक विरूप हयबाक हेतु अहाँ क्रोध जनु करी । कियैक तँ हमरालोकनि जे क्षत्रिय छी, तनिकाँ युद्ध भेला पर सभ किछु भय जाइछ । किन्तु मृत्यु-दण्डभागियो ई अहाँक कृपे सँ श्रीकृष्णक द्वारा बचाओल गेलाह ओ छोड़ल गेलाह ।

(रुक्मिणी आनन्दपूर्वक सखीकेँ देखैत छथि ।)

सुदक्षिणा—जेना आर्य आज्ञा देल अछि तेना करतीह प्रियसखी ।

नारद - (प्रवेश कय, रुक्मीकेँ देखि हँसी मजाक कय) जाउ अहाँ ।

(हुनकालोकनि सँ आज्ञा पाबि रुक्मी बाहर गेलाह ; अपन प्रतिज्ञा वचन स्मरण कय लाजेँ भोजकट नगर मे निवास कयलनि ।)

नारद - भगवान ! आज्ञा दिय हमरा ब्रह्मलोक जयबा लेल । आओर की पुनः अहाँक प्रिय हम करू ?

श्रीकृष्णः - देवर्षे ! पूर्णाः सर्वे नो मनोरथाः । वैदर्भीं पृच्छ ।

नारदः - कथयतु भवती ।

रुक्मिणी - अज्जस्स प्पसादेण सव्वं णो पिअं संवुत्तं, तहावि सम्पदं एदं होदु । [आर्यस्य प्रसादेन सर्वं नः प्रियं संवृत्तम् । तथापि साम्प्रतमिदं भवतु ।]

(ततः सखीभ्यां सह गायति । सर्वे च गायन्ति तत्र गीतम्):--

[गीत सं०---६४]

वारिद वारि विमुञ्चथु काले ।
अवनि रहथु बहु अन्ने विसाले ॥
परजा पालि धरम अनुरूपे ।
मुदित रहथु मिथिलापति भूपे ॥
भारति भगति 'भावें थिर वासे ।
बुधजन - मानस करथु विलासे ॥

श्रीकृष्ण - देवर्षि ! हमरालोकनिक सभ मनोरथ पूर्ण भय गेल । रुक्मिणीकें पुछियनु ।

नारद - रुक्मिणी ! अहाँ कहू ।

रुक्मिणी - आर्यक कृपासँ हमर सभ प्रियकार्य पूर्ण भेल । तैयो एखन ई होअओ ।

(तखन दुनू सखीक संग गबैत छथि ओ सभ केओ गबैत छथि । ताहिठामक गीत)—

[गीतसं०—६४]

वारिद = मेघ । वारि = पानि । विमुञ्चथु काले = समय पर छोड़थु, बरिसथु । अवनि = पृथ्वी । मुदित = प्रसन्न । भारति = सरस्वती । भगति भावें = भक्तिभावना सँ । बुधजन मानस = विद्वानक मन मे । विलासे = खेल । तसु = विद्वानक । दारिद —

तसु गुन जानि हरषि ततकाले ।
दारिद हरथु सतत महिपाले ॥
नृपति होअ जनु पिशुन - समाजे ।
सानन्द रहथु सकल द्विजराजे ॥
सविनय सुमति रमापति भाने ।
रूपक करथु सुजन अनुरागे ॥

श्रीकृष्णः—देवर्षे ! सम्यक् प्रियया तत्सखीभ्यां च प्रार्थितम् । तस्मादहमपि याचे । (श्लोकेन) ।—

काले वारिधरो विमुञ्चतु जलं, शस्यैः प्रपूर्णाऽवनि-
र्नित्यं चाऽस्तु, महीभुजः प्रमुदिता, धर्मेण पान्तु प्रजाः ।
वाग्देवी प्रिय भक्तितो हृदि सतां भूयाद् विलासोज्ज्वला
मा भूद् भूपसभा खलैरुपचिता, नन्दन्तु विप्राः सदा ॥४०॥

नारदः—(सोल्लासम्) एवमस्तु ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

दरिद्रता । सतत = हर दम । महिपाले = राजा । नृपति = राजा । पिशुन-समाजे = दुर्जनलोकक सम्पर्क मे । द्विजराजे = सद् ब्राह्मण । रूपक = दृश्यकाव्य (रुक्मिणीपरिणय नाटक) मे । सुजन = नीकलोक ।

श्रीकृष्ण—देवर्षि ! प्रिया ओ हुनक दुहू सखी यथोचित माङ कयलनि । तें हमहुँ माङैत छी । (श्लोकक द्वारा)—

उचित समय पर मेघ जल बरिसओ, पृथ्वी धान्य सँ पुरल रहय, प्रसन्न राजालोकनि धर्मसँ प्रजापालन करथु, भगवती वाणी (सरस्वती) प्रियभक्ति सँ सज्जनक हृदयमे लीला कय प्रकाशित होथु, राजाक सभा दुर्जनसभ सँ जनु भरय ओ ब्राह्मणलोकनि सतत आनन्दित रहथु ॥४०॥

नारद—(आनन्द पूर्वक) एहिना होअओ ।

(सभ केओ बहार भय गेल ।)

॥ इति रुक्मिणी-परिणये रुक्मिणीहरण-परिणय-प्रदर्शनं

नाम षष्ठोऽङ्कः ॥

इति श्रीमद् भृगुदेव-कुलोद् भव-सत्कवि-श्रीमत्कृष्णपत्युपाध्यायात्मजेन,

महामहोपाध्याय-शङ्करमिश्र-कुलोद्भव-महामहोपाध्याय-

-रतिपतिमिश्राऽनुज - धर्ममिश्र - धर्मपतिशर्मणो

दौहित्रेण, पल्लीसं० श्रीरमापति-शर्मणा

विरचितं रुक्मिणी-परिणय - नाटकं

समाप्तम् ।

रुक्मिणी-परिणय मे रुक्मिणीक हरण ओ विवाहक प्रदर्शन

नामक छठम अङ्क समाप्त ॥

श्रीमान् भृगुदेवक कुलमे उत्पन्न, कविवर श्रीमान्कृष्णपति उपाध्यायक

पुत्र, महामहोपाध्याय - शङ्करमिश्रक कुलमे उत्पन्न • म०

म० रतिपतिमिश्रक छोट भाय—श्रेष्ठ मिश्र'

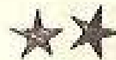
धर्मपतिशर्माक दौहित्र, पल्लिवारकुल-

संभव श्रीरमापतिशर्माक बना-

ओल रुक्मिणीपरिणय

नाटक समाप्त

भेल ॥



परिशिष्ट

रमापतिक स्फुट गीत

१---त्रिपुरसुन्दरीक गीत

जय जय त्रिभुवन - सुन्दरि शंकरि, वैरि - भयंकरि[1] माया ।

जवाकुसुम - कुंकुम - नूतनरवि, - निन्दक लोहित काया ॥

मणिमय मुकुट सीस अतिसोभित, नील - वरन[2] कच—पासे ।

कुटिल अलक बिरचित मुकुतावलि भौंह काम—धनु[3] भासे ॥

अधर प्रवाल, दसन दालिम—बिज, मधुर हास[4] भल छाजे ।

आनन्दे तीनि विलोल विलोचन, नासा बेसरि[5] राजे ॥

हीरक जटित विमल चामीकर, श्रुति ताटंक विसाला ।

मानिके विद्रुमे[6] खचित नखत सम, मंजुल मोतिम माला ॥

आधा इन्दु तिलक तहू सुन्दर, [पावक[7]] बिन्दुक कांती ।

पास अंकुस धनु बान विभूषित, चारि भुजा भल भाँती ॥

१—शंकरि = कल्याणकारिणी त्रिपुर सुन्दरी । वैरि भयंकरि = शत्रुक हेतु भया-नक । जवाकुसुम ··· निन्दक = ओड़ूलक फूल, केसर ओ प्रातःकालीन सूर्यक छवि कें निन्दित करयवाला । लोहित काया = लाल देह । नीलवरन कचपासे = केश नीला छनि । कुटिल अलक = टेढ़ मेढ़ केश से । कामधनु = कामदेवक धनुष । प्रवाल = मूङा । दसन = दाँत । नासा = नाक से । हीरक = हीरा सँ । चामीकर = सोनक बनल । श्रुति ताटंक = कानक गहना । मानिके विद्रुमे = मणि ओ मूङा सँ । नखत सम = तारा जकाँ । इन्दु = चन्द्रमा । पावक = अग्नि । कांती = कान्ति । करिवर कुम्भ – हाथीक मस्तक । उरजयुग = दुनू स्तन । अरुन दुकूले = लाल पस्त्र । अमूले =

---

१ – भयङ्कर । २ – बरन । ३ – धेनु । ४ – हार । ५ – केसरि । ६ – विद्रुमे । ७ – ० (अभाव) ।

करिवर कुम्भ समान उरज युग, पहिरन अरुन दुकूले ।
किंकिनि कंकने केयुर नेउर, [भूषन[८]] विमल अमूले ।।
नख दीधिनि गंजित रजनीकर, चरण सरोज समाने ।
मृगमद केसरि अंग विलेपित, मुख परिपूरित पाने ।।
कमलापति, कमलासन, शंकर, तुअ पद चरय धेआने ।
सभे अभिमत पूरिअ परमेश्वरि ! प्रनत रमापति भाने ।।

२---झूला - गीत

बंसी - बट[१] तह लाओल, नन्दकुमार - हिंडोल ।
भानुसुता - परिसीलित शिशिर अनिल मृदु डोल ।।
नव घन गरजे सिखर पर[२], मालति रम रोलम्ब ।
गगन तिरोहित रवि ससि, कुसुमित कुटज कदम्ब ।।
.... ।
पदराग मणि मण्डित, इन्द्रनील—युग कांति ।।
.... [३] ।
ऊपर फटिक - सकल दय, केलि कयल आरम्भ ।।

अमूल्य ।। नख-दीधिति-गञ्जित = नहक प्रकाश सँ तिरस्कृत । रजनीकर = चन्द्रमा । सरोज = कमल । मृगमद = कस्तूरी । कमलापति = विष्णु । कमलासन = ब्रह्मा । अभिमत = अभिलाषा ।।

२—वंशीवट = बड़क गाछ जतय कृष्ण बंसी बजबैत छलाह । तह = सँ (वस्तुतः 'तह' पाठ उचित)। नन्दकुमार हिंडोल = कृष्णक झूला । भानुसुता...... डोल = यमुनाक स्पर्श सँ शीतल बसातक द्वारा मन्द मन्द डोलैत अछि । घन = मेघ । मालति रम रोलम्ब = मालतीफूलक संग भौंरा रमण करैछ । तिरोहित = झँपाएल । रवि-ससि = सूर्य-चन्द्र ।। इन्द्रनीलयुग = दुइ गोट इन्द्रनील मणिक समान ।। फटिकसकल = स्फटिक पाथरक

८—० (अभाव) ।
१—वट । २—सिखरावर । ३ - (पाँच पाँतीक लगभग खण्डित अक्षरक्ष)

सुदिढ़े[४] बरनें चढ़ाओल[५], दइए विमल मध[६] तूल ।
हाटके पाट सखी संगे, राधा नागरि झूल[७] ।।
तनु छवि निन्दित चम्पक, मनि - भूषन बहुमूल ।
कनक किनारी राजित, परिहन नील दुकूल ।।
पवनें उड़ अवगुण्ठन, वेकत होअ मुखकांति ।
जनि युग खंजन लागल गगन सरोरुह पाँति ।।
बहुविधि ललित[८] हास कय, पञ्चम सरें कर गान ।
जनि उरवसि परिजन लय, गावति चढ़ल विमान ।।
सेद विमल परिपूरित, देखि हृदय होउ भान ।
कनक वेधि[९] मन गुनि जनि[१०], मुकुता फल निरमान ।।
वदन सुसौरभ उपगत सरस मधुप[११] झंकार ।
तें डर[१२] किंकिनि—कलरव हरि - हरि[१३] वचन उचार ।।

टुकड़ा । केलि = विलास, खेल । सुदिढ़े = मजबूत । मध = कपड़ाक बीचमे । तूल = तूर । हाटके पाट = रत्नयुक्त रेशमी वस्त्र पहिरि ।।
तनु छवि = देहक कान्तिसँ । कनक = सोना । परिहन = पहिरन वस्त्र । दुकूल = साड़ी ।।

पवनें = बसात सँ । अवगुण्ठन = घोघट । वेकत = व्यक्त । युग खञ्जन = खञ्जनक जोड़ी । गगन सरोरुह = आकाश-कमल (मुँहमे) । ललित = सुन्दर । सरें = स्वर सँ । उरवसि = उर्वशी अप्सरा । परिजन = परिवार।।

सेद विमल = स्वच्छ घाम । कनक वेधि = सोनाकेँ छेदि कय बहार भेल। मुकुताफल = मोतीक दाना । सुसौरभ = सुगन्ध । उपगत = भेल । मधुप = भौँरा । किंकिनि कलरव = पायलक शब्द सँ ।।

४ - सुदृढ़ । ५ - चढ़ाओल । ६ - मध । ७ - झूल । ८ - लाल । ९ - वधि । १० - जनु । ११ - रूप । १२ - तेँ उर कलकिंकिनि-ख । १३ - हर ।

उरसिज भार बेआकुल, मध्य भाँगि१४ जनि जाय ।
तेँ त्रिवली—गुन बान्धल, पुरबहि मदन बनाय ॥

एहि अवसर हरि आएल, बिसरल सब अभिमान ।
सिंह नरेन्द्र भूप बुझ, सुमति रमापति भान ॥

उरसिज = स्तनक । मध्य = डाँर । भाँगि = टूटि । त्रिवली-गुन = पेटक रेखारूपी डोरी सँ । पुरबहि = पहिनहि । मदन = कामदेव ॥

१४—भाग जाने ।

